शोधादर्श

४६

स्वस्तिक पीठासीन सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्र आधारित धर्मचक्र

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

सौ. मंजरी जैन

आगमन	परिणय	प्रयाण
11 जनवरी, 1938 ई.	27 नवम्बर, 1953 ई.	8 जनवरी, 2018 ई.
आरा	आरा – लखनऊ	लखनऊ

1994 के गणतन्त्र दिवस पर सम्बोधन

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, फोन नं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com मो. 9236062715

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

शोधादर्श–86

वीर निर्वाण संवत् 2544 जनवरी–जून 2018 ई.

विषय क्रम

			पृ.
1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	3–4
2	श्री गणेश प्रसाद वर्णी	श्री रमा कान्त जैन	5–12
3	समाज चेते, देश जागे	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	13–17
4	शिथिलोन्मुख जैन साध्वाचार : एक समीक्षा	श्री अजित प्रसाद जैन	18–21
5	कीर्ति–स्तम्भ : एक नई परम्परा	श्री अंशु जैन 'अमर'	22–25
6	सरहिंद के टोडरमल जैन की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन	26–27
7	दौलतराम जी की अज्ञात कृति का जीर्णोद्धार	प्रो. वीर सागर जैन	28–29
8	बाबा दौलतराम वर्णी 'नैनागिरि' की रचनायें	श्री सुरेश जैन	30–32

9 चिन्तन विमर्श
वर्णी – साध्वाचार – श्री अमित शाह | डॉ. शशि कान्त | 33–36
10 प्राकृत मुक्तक काव्य *वज्जालग्गं* – एक अध्ययन | डॉ. सौ. अलका अग्रवाल | 37–41
11 *वज्जालग्गं* में प्रतिपादित जीवन मूल्य | प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' | 42–52
12 नारी की मर्यादा | सौ. मंजरी जैन | 53–55
13 **Psycho-healing Preksha Therapy of Forgiveness** | डॉ. समणी शशि प्रज्ञा | 56–59
14 नज़रिया (पद्य) | श्री अमरनाथ | 60
15 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., प्रतिवेदन वर्ष 2017–18 | श्री नलिन कान्त जैन | 61–65
16 साहित्य सत्कार | डॉ. शशि कान्त | 66–67
The World's Biggest Rakhi of Human Protection;
छन्दोदय : गोम्मटसार जीवकाण्ड
17 आभार | 67
18 अभिनन्दन | 68–69
19 शोक संवेदन | 69
20 श्री बसंतराज जैन की विदाई (पद्य) | श्री लूणकरण नाहर जैन | 70
21 समाचार विविधा | 71
22 सौ. मंजरी जैन स्मृतिका
स्मृतिशेष संगिनी | डॉ. शशि कान्त | 72–74
स्नेह उद्‌गार | चि. विभव जैन | 75
चि. राजीव कान्त जैन | 75
श्रीमती शारदा जैन | 76
श्रीमती सरिता अग्रवाल | 77
सौ. इन्दु कान्त जैन | 78
श्री स्वराज्य चन्द्र जैन | 78
2 चित्र | 79
23 पाठकों के पत्र | 80
श्री बी.डी. अग्रवाल, श्री शिरीष कान्त जैन
कवर पृष्ठ एक – मथुरा से प्राप्त पहली शती ई. का पुरावशेष
कवर पृष्ठ दो व तीन 2–2 चित्र
कवर पृष्ठ चार आवश्यक सूचना

✧✧✧

सम्पादकीय

विगत अंक 85 युग–पुरुष–त्रयी स्मृति विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया था। समाज के सभी विद्वत्जनों को और पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकों को यह अंक भेजा गया था। हमें विस्मय हुआ कि इस अंक के सम्बन्ध में कोई पाठक उत्प्रेरित नहीं हुआ। इसका एक कारण तो यह है कि जो विचारशील विद्वान थे उनमें से अधिकांश यह संसार छोड़ चुके हैं और जो अभी हैं भी वे अस्सी वर्ष की वय के पार के हैं जब वैचारिक प्रवृत्ति शिथिल हो जाती है। यह तो संसार का चक्र है इसलिए हमें इस परिस्थिति पर विशाद नही है परन्तु एक प्रकार की उदासी अवश्य है।

प्रस्तुत अंक 86 में प्राकृत काव्य संग्रह **वज्जालग्गं** पर विशेष सामग्री प्रकाशित की जा रही है। अब तक अज्ञात एक वर्णी जी का परिचय भी दिया जा रहा है। श्रद्धेय बाबा जी, छोटे बाबा जी व चाचा जी के वह लेख इसमें पुनः प्रकाशित किये जा रहे हैं जो आज के परिदृश्य के लिए प्रासंगिक हैं।

सम्पादक मण्डल के सहयोगी श्री अंशु जैन 'अमर' और सौ. डॉ. अलका अग्रवाल के प्रेरणादायक लेखों के अतिरिक्त दमोह के डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', भोपाल के श्री सुरेश जैन, लाडनूं की डॉ. समणी शशि प्रज्ञा, लखनऊ के श्री अमरनाथ व श्री लूणकरण नाहर जैन और दिल्ली के प्रो. वीर सागर जैन तथा डॉ. अनेकान्त कुमार जैन ने अपने आलेख/रचनायें भेजने की कृपा की, जिसके लिए उन्हें साधुवाद!

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समित, उ.प्र., के प्रतिवेदन वर्ष 2017–18 एवं लेखा प्रकाशित हैं। साहित्य सत्कार, आभार, अभिनन्दन, शोक संवेदन, समाचार विविधा एवं पाठकों के पत्र, पूर्ववत समाहित हैं।

इस अंक में अपनी माता जी – सौ. मंजरी जैन के सम्बन्ध में **स्मृतिका** प्रकाशित की जा रही है। 'नारी की मर्यादा' शीर्षक से उनका जो लेख प्रकाशित है वह उन्होंने 26 अक्टूबर से 29 अक्टूबर, 1975, को सम्पन्न 'भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा' विषयक संगोष्ठी में प्रस्तुत किया था। उनके सुपुत्र होने के आधार से मैं यह कहना चाहूंगा कि नारी की जिस मर्यादा का विवेचन उन्होंने किया था उसे उन्होंने अपने जीवन में जिया भी।

पिता जी आज के धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेश से व्यथित हैं। कुछ मुद्दों पर उन्होंने अपना 'चिन्तन विमर्श' प्रस्तुत किया है।

समिति के अध्यक्ष श्री लूण करण नाहर जैन और सम्पादक मण्डल के सदस्यों के सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

नलिन कान्त जैन

सम्पादक

30–6–2018

✦✦✦

श्री गणेश प्रसाद वर्णी

– श्री रमा कान्त जैन

श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ में जिन गुरुवर तपोमूर्ति गणेशप्रसाद वर्णी का सादर स्मरण किया गया है उनके प्रत्यक्ष दर्शनों से वंचित रहते हुए भी उनका नाम मेरे कर्ण–कुहुरों में किशोरावस्था से ही पड़ता रहा। पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जी से मिलने आने वाले विद्वद्वर्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री और प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला वार्तालाप के दौरान जब–तब वर्णी जी की चर्चा उनसे करते रहते थे। 7 मार्च, 1951, को प्रो. खुशालचन्द्र जी ने पिता जी को **वर्णी–अभिनन्दन–ग्रंथ** भेंट किया था। श्री वर्णी हीरक जयन्ती महोत्सव समिति, सागर, द्वारा आश्विन 2476 वी.नि. को प्रकाशित इस महाकाय ग्रन्थ का सम्पादन प्रो. गोरावाला ने ही किया था और उसमें पिता जी का शोध आलेख 'स्वामी समन्तभद्र का समय और इतिहास' समाहित था। उस किशोरावस्था में इस ग्रंथ को पढ़ने–समझने की बुद्धि तो मुझे नहीं थी, किन्तु उसमें पृ. 60 पर स्याद्वाद विद्यालय, काशी, के विद्यार्थी नरेन्द्र की रचना 'इनको गणेश हम कैसे कहें' तब भी मन को भायी थी। तदनन्तर 12–2–1975 को पिता जी के पास सन् 1974 ई. में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद द्वारा वर्णी जी की जन्मशती पर प्रकाशित तथा डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य एवं श्री नीरज जैन द्वारा सम्पादित **श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृतिग्रन्थ** आया। उसमें भी पिता जी का लेख 'युग–पुरुष वर्णी जी' समाहित रहा। किन्तु उस समय भी अन्य व्यस्तताओं के चलते उस ग्रन्थ को पढ़ने का अवकाश नहीं निकाल सका। मेरे घर मुजफ्फरनगर से प्रकाशित मासिक पत्रिका **वर्णी प्रवचन** आती है और उसमें जब–तब वर्णी जी की जीवन गाथा के कुछ प्रसंग पढ़ने में आये। किसी अन्य प्रसंग में जब **जैन जागरण के अग्रदूत** पुस्तक देख रहा था, उसमें समाहित श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय द्वारा सन् 1951 ई. में उकेरे गये शब्द चित्र पर दृष्टि जा पड़ी। उसके अनुसार श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी एक ऐसे व्यक्ति थे जो तप से कृश, तेज से दीप्त, सांवला रंग, स्वच्छ हृदय, पण्डितों के पण्डित, बालकों जैसे सरल स्वभावी, उन्नत ललाट, अन्तरंग को देखने में लीन अधखुले से नेत्र, कीर्ति–प्रतिष्ठा से निर्लिप्त, वर्षों नंगे पांव एक लंगोटी लगाये चादर ओढ़े सर्दी–गर्मी की चिन्ता

किये बिना ही गांव–गांव और शहर–शहर में जन–जन को अहिंसा–सत्य का उपदेश देते हुए घूमते रहे। वह चलते तो धनकुबेर उनके पांवों में लक्ष्मी बिखेरते चलते और विद्वत्वर्ग अपनी सीमाओं में ही रोक रखना चाहते, पर वह निर्विकार अपनी डगर पर बढ़ते रहे।

इस चित्रण ने वर्णी जी के विषय में और जानने की उत्सुकता मन में जगायी और मैं **वर्णी–अभिनन्दन ग्रन्थ** और उनके **स्मृति ग्रन्थ** के पन्ने पलटने लगा तथा 19वीं–20वीं शती ई. में हुए इस विलक्षण व्यक्तित्व के धनी के प्रति मुग्ध होता चला गया।

जीवन–वृत्त

विक्रम संवत् 1931 (1874 ई.) की आश्विन कृष्ण 4 को उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले की महरौनी तहसील के अन्तर्गत हंसेरा ग्राम में वैष्णव धर्मावलम्बी असाटी वैश्य जाति के मध्यम वित्तीय परिवार में जन्मे और 4 सितम्बर, 1961 ई. को ईसरीबाजार (वर्तमान में झारखंड राजयान्तर्गत) के दिगम्बर जैन शान्ति निकेतन में आध्यात्मिक जैन सन्त के रूप में लगभग 87 वर्ष की वय में दिवंगत हुए गणेश प्रसाद वर्णी जी का जीवन अनेक उतार–चढ़ाव से युक्त विविध दृष्टियों से बहुरंगी रहा। एक सामान्य से अति–असामान्य युग–पुरुष के रूप में उभरे गणेश प्रसाद जी के पिता जी का नाम हीरालाल और माता जी का उजियारी था। यद्यपि उनके पिता जी को णमोकार मन्त्र का श्रद्धान था, उनकी माता जी अपनी कुल परम्परा से आबद्ध कट्टर वैष्णव थीं और अपनी सन्तति को भी वैष्णव ही रखना चाहती थीं। जब गणेश प्रसाद जी छह वर्ष के बालक थे उनका परिवार मड़ावरा आकर बस गया। वहीं उनकी शिक्षा का श्री गणेश हुआ और चौदह वर्ष की वय में हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। मड़ावरा में 2 वैष्णव और 11 जैन मन्दिर थे। मड़ावरा में रहते हुए गणेश प्रसाद जी जहाँ प्रतिदिन संध्या समय अपने गुरु जी के साथ वैष्णव मन्दिर (शाला) में आरती देखने, **रामायण** सुनने तथा प्रसाद लेने जाते थे, वहीं घर के सामने स्थित जैन मन्दिर में होने वाली शास्त्र–सभा में अपने पिता जी के साथ जाने का सुअवसर भी उन्हें प्राप्त रहा। जैन मन्दिर के वातावरण और मड़ावरा की जैन समाज के आचार–विचार ने बालक गणेश प्रसाद को ऐसा प्रभावित किया कि दस वर्ष की वय में रात्रि भोजन का त्याग करने का नियम ले बैठे। एक रात शाला में बटे प्रसाद के पेड़े लेने से इंकार कर गुरु जी को कुपित कर दिया। बारह वर्ष की उम्र में उनका यज्ञोपवीत हुआ। उस समय कुल पुरोहित से उनकी किसी बात पर झड़प हो गई। उनकी माता जी उन

पर कुपित हुई। विद्रोही किशोर ने ऐलान कर दिया, "अब मोय ई धर्म में नईं रैने। आज से जिनेन्द्र को छोड़कर दूसरे को नई मानूंगो।"

अठारहवें वर्ष में उनका विवाह कर दिया गया। पत्नी भी परम वैष्णव थी। दुर्भाग्य से उस वर्ष अनेक पारिवारिक आपदाएं उन पर टूट पड़ीं। पहले विवाहित बड़े भाई की मृत्यु हुई, तदनन्तर पिता को सन्निपात। उसे देखकर 110 वर्षीय पितामह ने इच्छामरण किया और अगले दिन पिता भी चल बसे। विधवा जीवित–मृत युवती भाभी और बिलखती वृद्धा माता ने उन्हें उस अल्पवय में संसार की क्षणभंगुरता का एहसास करा दिया। साथ ही परिवार के भरणपोषण का दायित्व उनके कन्धों पर आ पड़ा। उसे निभाने हेतु मदनपुर के स्कूल में मास्टरी प्रारम्भ की, किन्तु प्रशिक्षित न होने के कारण आगरा ट्रेनिंग लेने जाना पड़ा। किसी मित्र के साथ जयपुर गये और वहां से इन्दौर पहुंचे और वहां शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली, किन्तु अधिक दिन नहीं टिके, घर लौट आये। जब पत्नी का द्विरागमन हुआ आजीविका हेतु कारीटोरन ग्राम के स्कूल में अध्यापकी करने लगे।

कुछ समय बाद चचेरे छोटे भाई के विवाह में जैनियों जैसा भोजन न होने के कारण पंगत में जीमने से इंकार कर दिया। जाति वाले आग–बबूला हो गये और उन्हें जाति से निकालने की धमकी दे दी। उनकी माता जी और पत्नी ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, पर वह नहीं माने। "आप सब जनों की बात मंजूर है, मैं अपने आप अलग भओ जात" कहकर घर से निकल पड़े और जतारा के स्कूल में नौकरी करने लगे। वहां रहते हुए उनके मन में जैन धर्म का रहस्य जानने की अभिलाषा बढ़ी। संयोग से समीपवर्ती गांव सिमरा जाना पड़ा। वहां सम्पन्न जैन धर्मानुयायी विधवा सिंघैन चिरौंजाबाई से उनकी भेंट क्या हुई, लगा चिरौंजाबाई को जन्मान्तर का बिछुड़ा हुआ पुत्र और गणेश प्रसाद जी को जन्मान्तर की बिछुड़ी मां मिल गई। उन्हांने उन्हें अपनी सगी माँ से अधिक मान–सम्मान दिया। गणेश प्रसाद जी की जैन धर्म के सम्बन्ध में ज्ञानपिपासा को शान्त करने का पथ प्रशस्त हो गया। उन्हें संरक्षक प्राप्त हो गया।

एक बार खुरई के जिन मन्दिर की शास्त्र सभा में कुछ बोलने को उद्यत हुए तब वहां किसी के द्वारा दिये गये व्यंग्यपूर्ण उलाहने ने उनको ऐसा मर्माहत किया कि उन्होंने जैन शास्त्रों के सम्यक् अध्ययन करने का प्रण कर लिया। इस हेतु अनेक स्थान गये। मुम्बई में पं. जीवाराम से **कातन्त्र व्याकरण** तथा पं. पन्नालाल बाकलीवाल से **रत्नकरण्ड श्रावकाचार**

का अध्ययन किया। उन दिनों कापियाँ बेचना उनकी आजीविका का साधन था। संयोग से माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन परीक्षालय की परीक्षा में ससम्मान उत्तीर्ण होने पर पं. गोपालदास बरैया ने उन्हें छात्रवृत्ति दिलवा कर जयपुर भेज दिया जहां उन्होंने **सर्वार्थ सिद्धि** आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। खुरजा में रहकर उन्होंने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, वाराणसी, की प्रथमा तथा न्याय मध्यमा परीक्षा का प्रथम खण्ड उत्तीर्ण किया और काशी में पं. अम्बादास शास्त्री से न्याय शास्त्र का अग्रतर अध्ययन किया और अन्ततः जैन दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित 'न्यायाचार्य' बन गये।

काशी में पं. जीवनाथ मिश्र द्वारा ब्राह्मण न होने के कारण उन्हें पढ़ाने के लिये इन्कार कर दिये जाने पर उनके चित्त को ऐसी चोट पहुंची कि उन्होंने वहां जैन शिक्षण संस्था की स्थापना का संकल्प ले लिया, और उनके प्रयत्नों से वाराणसी में "स्याद्वाद विद्यालय" की नींव पड़ी। उस विद्यालय में आदि–अध्यापक उपर्युक्त पं. अम्बादास शास्त्री जी तथा आदि–छात्र स्वयं गणेश प्रसाद जी, पं. बंशीधर जी (इन्दौर) और पं. गोविन्दराय जी के साथ रहे। आज उक्त विद्यालय ऐसे महाविद्यालय के रूप में विद्यमान है जिसे विगत लगभग एक शती में समाज को सैकड़ों प्रकाण्ड पण्डित प्रदान करने का श्रेय रहा है। अध्ययनोपरान्त जब अपनी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड क्षेत्र वापस आये तो वहाँ सामान्य शिक्षा की अवनत अवस्था और रूढ़िग्रस्त समाज की स्थिति ने उनके मन को कचोटा। उन्होंने वहाँ शिक्षा–प्रचार, पाठशालाओं की स्थापना और समाज–सुधार का बीड़ा उठाया। उनके प्रयत्न से सागर में 'सतर्क सुधारतरंगिणी पाठशाला' की स्थापना हुई जो अब 'गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय' के नाम से विख्यात है। उनकी प्रेरणा से बरूआसागर, शाहपुर, द्रोणगिरि, ललितपुर, इटावा, खतौली प्रभृति स्थानों पर विद्यालय तथा खुरई एवं जबलपुर में गुरुकुल खुले। समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों के विरुद्ध जनजागरण हेतु गांव–गांव पदातिक भ्रमण किया। स्थानीय समाज के पारस्परिक झगड़ों और विवादों को सुलझाने में भी कई बार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु आजीविका के लिये अध्यापकी अपनाने वाले गणेश प्रसाद जी को आगे चलकर गूढ़ जैन ग्रन्थों के पढ़ाने तथा समाज में विगत शती में हुए अनेक विश्रुत विद्वानों का गुरु बनने का श्रेय भी रहा। अपने शिष्यों के प्रति गुरु गणेश प्रसाद जी का व्यवहार कैसा स्नेहपूर्ण था, वह अपने

शिष्यों को आगे बढ़ाने में, उन्हें प्रोत्साहन देने में कितना तत्पर रहते थे, इसकी झलक हमें उनके अनेक शिष्यों के संस्मरणों में मिलती है। पं. दरबारीलाल सत्यभक्त (स्वामी सत्यभक्त, वर्धा) सन् 1911 ई. से 1916 ई. तक सागर की पाठशाला में अध्ययनरत रहे थे। वहाँ गणेश प्रसाद जी बड़े पंडितजी के नाम से जाने जाते थे। एक बार दरबारीलाल जी ने अपने एक साथी से झगड़ा हो जाने पर उसके विरुद्ध कुछ दोहे बनाकर प्रचारित किये। उस साथी ने अध्यापक से शिकायत की। अध्यापक ने दरबारीलाल जी का जवाब तलब किया और सन्तुष्ट न होने पर बड़े पंडित जी से बात कही। पर बड़े पंडित जी ने न उन्हें बुलाया, न डांटा फटकारा। अगले दिन सामने पड़ जाने पर बिना किसी प्रकार की भूमिका बांधे बोले, "दरबारी! तुम कविता तो अच्छी करते हो भैया! यदि तुम भगवान की प्रार्थना बनाने में अपनी शक्ति आजमाओ तो मुझे बहुत प्रसन्नता हो।" बड़े पंडित जी के इस मनोचिकित्सक व्यवहार ने बालक दरबारी पर अद्भुत प्रभाव डाला और उसने प्रयास कर शाम तक दो प्रार्थनाएं बना डाली। पंडित जी ने दरबारी को शाबासी दी और उसकी रचनाएं पाठशाला में प्रार्थना रूप में पढ़ी जाने लगी। दरबारीलाल जी को भाषण देने के लिये भी उन्होंने प्रेरित किया। वह अपने शिष्यों को लेकर मैदान में उनके साथ खिलाड़ी की तरह खेलते भी थे।

प्रवचन कुशल वर्णी जी बुन्देलखण्डी मिश्रित खड़ी बोली में विविध दृष्टान्तों द्वारा अपनी बात समझाते श्रोताओं के हृदय में उतर जाते थे। वह लेखनी के भी धनी थे। अपनी डायरी में वह मात्र घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखते थे, अपितु उनकी सार्थक मीमांसा भी करते थे। **वर्णी वाणी** नाम से उनकी डायरी का चार भागों में संकलन–प्रकाशन हुआ। **मेरी जीवन गाथा** नाम से आत्मकथा और **समयसार पर प्रवचनात्मक टीका** भी उन्होंने रची।

मार्मिक प्रसंग :

निर्भयता, निस्संगता, सरलता, स्वाभिमान, परदुखकातरता, उदारता और परोपकार गणेश प्रसाद जी की रग–रग में समाये थे। स्याद्वाद विद्यालय के विद्यार्थी रहते एक बार वह बिना अधिष्ठाता ब्र. उमराव सिंह से अनुमति लिये रामनगर की रामलीला देखने चले गये। लौटने पर फटकार पड़ी। जवानी के जोश में गणेश प्रसाद जी भी कुछ कह गये। फलतः कठोर अनुशासक बाबा जी ने उन्हें विद्यालय से पृथक कर दिया। किन्तु विदायी सभा में उनके द्वारा व्यक्त पश्चाताप एवं दृढ़तापूर्ण भाषण ने स्थिति पलट

दी। अपने आदर्श और लोकशक्ति का विचार कर ब्रह्मचारी जी ने ही अधिष्ठाता पद त्याग दिया।

जिस समय **कातन्त्र व्याकरण** की परीक्षा दे रहे थे पत्नी की मृत्यु का समाचार मिला। उन्होंने निस्संग भाव से मुक्ति की सांस ली। सागर में रहते समय एक कुंजड़न के स्पष्ट व्यवहार पर मुग्ध हो उससे शाक–भाजी लेने जाने लगे। उन दिनों पहनने–ओढ़ने आदि के शौकीन भी थे। उसके यहाँ ही रोज–रोज जाने पर छिद्रान्वेषी लोगों में कुछ कानाफूसी हुई। उनके कान में भी इसकी भनक पड़ी। प्रतिकार स्वरूप उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।

एक बार वर्णी जी सागर से द्रोणगिरि बस से जा रहे थे। वह आगे की सीट पर बैठे थे। कुछ देर बाद किसी सरकारी अधिकारी के आ जाने पर पीछे की सीट पर बैठने को बाध्य किया गया। उन्हें सहन नही हुआ। उनके स्वाभिमान को ठेस लगी। बस से उतर पड़े। सवारी मात्र का त्याग कर दिया और पैदल ही द्रोणगिरि चले गये।

हीरा जड़ित सोने की अंगूठी पहने उन्हें उनके शिष्यों ने देखा है। पीतल के पात्र भोजन के लिये अनुपयुक्त होते हैं जानकर चांदी के बर्तन बनवा डालने वाले भोजनानन्दी गणेश प्रसाद जी को अच्छी जानकारी थी कि कहाँ कौन उत्तम भोज्य पदार्थ होता है या बनता है। तिस पर उससे भी बढ़कर उनकी उसके प्रति उदासीनता भी रही। अधिक पैसा पास न होने पर हफ्तों कच्चे चने चबाकर रहे और कभी–कभी भूखे भी रह गये। उदर भरण के लिये उन्हें एक बार मिट्टी खोदने का काम भी करना पड़ा था, और एक बार बेतूल में ताश के पत्ते पर दांव लगा गांठ के तीन रुपयों से भी हाथ धोना पड़ा था।

प्रारम्भ से ही परदुखकातर परोपकारी गणेश प्रसाद जी स्कूल में मिलने वाला वजीफा अपने निर्धन ब्राह्मण साथी तुलसीदास को दे देते थे। बनारस से सागर अपनी धर्ममाता के लिये लेकर चले 50 लंगड़ा आमों की टोकरी रास्ते में ही छात्रों और प्लेटफार्म पर खड़े निर्धन बालकों में बांटकर खाली कर दी थी। दीन या आक्रान्त को देखकर उन दयामूर्ति का हृदय तड़प उठता था। पात्र–अपात्र का विचार किये बिना उसकी सहायता करना उनका चरम लक्ष्य हो जाता था। अस्तु, उनके जीवन–चित्र में जहां एक समय लुहार से संडसी मांगकर लकड़हारिन के पैर से खजूर का कांटा निकालते हम उन्हें देखते हैं, वहीं दूसरे ही क्षण बहेरिया ग्राम के कुएं पर

दरिद्र दलित बालक को अपने लोटे से जल पिलाते और नेवा खिलाती उनकी मूर्ति दृष्टि–पथ में आ जाती है। तीसरे क्षण मार्ग में ठिठुरती स्त्री की ठंड दूर करने के लिए लंगोटी को छोड़ अपने तन से सब वस्त्र दे दने वाले त्यागी नजर आते हैं। वर्णी जी का जीवन ऐसी घटनाओं से भरपूर रहा। ये तो चन्द चित्र हैं उनके जीवन के।

वर्णी जी छुआछूत से दूर थे। कर्रापुर के कुएं पर पानी पीकर चलने को उद्यत वर्णी जी की दृष्टि सहसा पास खड़े प्यासे मेहतर पर ठिठक गई। दया उमड़ी और कुएं से लोटा भर कर उसे पानी पिलाया। लोकापवाद का भय मन में जागा तो लोटा उसे ही सौंप चलते बने। इस प्रकार स्थिति पालन और सुधार का अनूठा समन्वय किया। मन्दिरों में हरिजन प्रवेश के वह समर्थक रहे। कट्टरपन्थियों ने उनका विरोध भी किया, किन्तु उन्होंने परवाह नहीं की। सामयिक राष्ट्रीय भावनाओं से भी वह प्रभावित रहे।

कुछ भी तुच्छ नहीं है जगत में किसी भी महान कार्य को प्रारम्भ करने के लिये, उन्होंने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। जहां एक रुपये की प्राप्त प्राथमिक सहायता से चौंसठ पोस्टकार्ड क्रय कर उन्हें समाज के श्रेष्ठियों को भेज उन्होंने काशी के स्याद्‌वाद विद्यालय का बीज वपन किया, वहीं आजाद हिन्द फौज के सेनानियों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे की पैरवी हेतु चन्दा एकत्र करने के लिये हुई जनसभा में अपनी दो चादरों में से एक चादर अर्पित कर लोगों के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि देखते–देखते काफी धनराशि एकत्र हो गई।

एक बार उन्हें कार्बकल फोड़ा हो गया जिसका आपरेशन होना था। एनेस्थीसिया का इंजेक्शन लगाना जरूरी था, किन्तु उन्होंने मना कर दिया और बिना एनेस्थीसिया के इंजेक्शन के चुपचाप शान्त भाव से आपरेशन करा लिया। डॉक्टर भी चकित रह गया। यह थी कष्ट सहने की उनमें अदभुत क्षमता।

उज्जैन के डॉ. हरीन्द्रभूषण जी ने वर्णी जी की धर्ममाता चिरौंजाबाई जी के सागर के जैन विद्यालय में लगे चित्र की प्रतिलिपि बनाई। कलकत्ता न्यायतीर्थ की परीक्षा देने गये तो ईसरी में उतर कर वर्णी जी से मिलने चले गये। उन्हें चित्र दिखाया तो अपलक निहारते रहे और उसे अपने पास रख लिया। जब हरीन्द्रभूषण जी कलकत्ता से लौटते हुए उनसे पुनः मिलने गये तो उन्होंने तुरन्त चित्र लौटा दिया और कहा जब तक चित्र उनके पास रहेगा बाई जी के प्रति उनका ममत्व जागृत रहेगा। यह था उनका क्षणिक व्यामोह और तत्क्षण मोहनिवृत्ति।

लगभग चालीस वर्ष की वय में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत और लगभग 70 वर्ष की वय में बड़े ऊहापोह के साथ क्षुल्लक पद धारण कर लोकोपकार की भावना से वर्षो देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पदातिक विचरण कर अपनी जीवन संध्या अपने ईसरी स्थित उदासीन आश्रम में व्यतीत करने वाले तथा सल्लेखनापूर्वक इहलीला समाप्त करने वाले वर्णी जी की आकांक्षा क्या मुनि बनने की रही थी, यह विचारणीय है। भले ही अन्त समय उनके चेलों ने उन्हें निर्वस्त्र कर 'मुनि गणेशकीर्ति' नाम दे दिया, किन्तु अपने अन्तस में इसके लिये क्या वह समुत्सुक थे, कदाचित् नहीं। इसका संकेत हमें **स्मृति ग्रन्थ** में प्रकाशित प्रो. खुशालचंद्र गोरावाला के संस्मरण में मिलता है। अपनी मृत्यु से लगभग 18 दिन पूर्व 18 अगस्त, 1961 ई., को जब वह काफी रुग्ण थे उन्होंने प्रो. गोरावाला को बुलाकर और अपनी पिच्छी मंगवाकर उनसे कहा था – "इसकी इच्छा मत करना"। और जब प्रो. गोरावाला, पं. कैलाशचन्द्र जी और पं. जगन्मोहनलाल जी ने उनसे अपना आजीवन करणीय जानना चाहा तब उन्होंने इतना ही कहा, "तुम तीनों जो कर रहे हो उसे ही करते जाओ। अब और कुछ नहीं बताना है। कल्याणमस्तु।" इससे प्रतीत होता है कि वर्णी जी मुनिचर्या व्यावहारिक एवं आदर्श नहीं समझते थे। उनके महाप्रयाण के उपरान्त जब उनके अस्थि और भस्म के कलशों को प्रवाहित करने की बात आई तब डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी के संस्मरणानुसार, एक–एक अस्थि और भस्म कलश वाराणसी में वर्णी जी के अनन्य भक्त पं. मुकुन्द शास्त्री खिस्ते के निर्देशन में दो वेदज्ञ ब्राह्मण विद्वानों द्वारा वेदोच्चारण और णमोकार मन्त्र के मंगल घोष एवं वर्णी जी की जय के साथ पुण्यतोया भागीरथी की गोद में भी विसर्जित किये गये क्योंकि वह हिन्दू वैश्य परिवार में जन्मे थे।

महामना गणेश प्रसाद वर्णी जी की पुण्य जीवन गाथा को चन्द पंक्तियों में समेटना अति दुष्कर है। उसका यत्किंचित् स्मरण कर उस अमर विभूति को श्रद्धा–सुमन अर्पित हैं।

समाज चेते, देश जागे!

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

{देश में विघटनकारी तत्त्वों के प्रसार से और जैन समाज में जातिगत, पंथगत और गुरुगत संकीर्णताओं से क्षुब्ध, डॉक्टर साहब ने अपने महाप्रयाण से 6 माह पहले (दिसम्बर 1987 में) यह समीक्षा और उद्‌बोधन लेखबद्ध किया था। परिस्थितियों में इस बीच कोई सुधार नहीं हुआ है वरन् काफी बिगाड़ ही हुआ है। मनस्वी चेता डॉक्टर साहब के इस उद्‌बोधन से कुछ प्रेरणा ग्रहण करेंगे, यह आशा है। – सम्पादक}

प्रकृति–जन्य परिवेश

संसार के समस्त स्त्री–पुरुष 'मनुष्यजाति' नामक नामकर्म के उदय के कारण एक जातीय या सजातीय होते हुए भी श्रीमद्‌कुन्दकुन्दाचार्य की प्रसिद्ध उक्ति 'नानाजीव, नाना कम्मा, नाना विह हवेई लद्धि' के अनुसार वे अनेक है और उनमें परस्पर अन्तर होते हैं – उनके अपने–अपने कर्म, कर्मोदय और कर्मफल भिन्न–भिन्न होते हैं। उनकी लब्धियाँ या उपलब्धियाँ भी तद्‌नुसार विविध और विभिन्न होती हैं। ये कर्मजनित, प्रकृतिजन्य, स्वभावजन्य, जन्मजात संस्कार जन्य, शिक्षा–दीक्षाजन्य, और परिवेश–वातावरण–देशका आदि जन्य अन्तर एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न बना देते हैं। कोई रूपवान है तो कोई कुरूप, कोई बलवान है तो कोई निर्बल, कोई पूर्णांग है तो कोई विकलांग, कोई निरोगी है तो कोई रोगी, कोई बुद्धिमान–मेधावी–प्रतिभा सम्पन्न है तो कोई अल्पमति–जड़–मूर्ख है, किसी की क्षमता–योग्यता अधिक है तो किसी की अल्प है, कोई भद्रप्रकृति–सज्जन है तो कोई अभद्र–दुर्जन–दुष्टस्वभाव का है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच वैयक्तिक रुचियों, जीविकोपार्जन के लिए अपनाये गये व्यवसाय, आर्थिक स्थिति एवं पद–प्रतिष्ठा, देश–काल–भाषा आदि के भी भेद होते हैं। धार्मिक विश्वासों, धर्माचरण की प्रवृत्ति, क्षमता एवं प्रकारों तथा जीवन के लौकिक एवं पारमार्थिक लक्ष्यों के भी अन्तर हो सकते हैं। मनुष्य जाति के नाना प्राणियों में प्रायः सर्वत्र एवं सभी कालों में सहज ही पाये जाने वाले ये भेद या अन्तर उसकी जीवंतता, प्राणवत्ता एवं सक्रिय प्रगतिशीलता के ही द्योतक हैं। उन सबके रहते भी मनुष्यमात्र समान हैं, एक हैं, मानवता रूपी एक सूत्र में परस्पर बंधे हैं। इस अनेकता में एकता, भेद में अभेद, विविधता में समानता के बल पर ही वे सद्‌भाव, सहयोग एवं सहअस्तित्व

पूर्वक समष्टि के लिए हितकर सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति में स्वशक्त्यानुसार प्रयत्नवान होते हैं और मनुष्य का सामाजिक प्राणी होना चरितार्थ करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर होते हैं।

परन्तु, यदि वे वैयक्तिक या निहित स्वार्थों, सत्तालोलुपता, विषयलोलुपता, धन–परिग्रह या मान–प्रतिष्ठा की लिप्सा, पूर्वबद्ध धारणाओं, हठधर्मी, अंधविश्वासों, अज्ञान आदि के वशीभूत होकर भेद में अभेदता या अनेक में एकता के मौलिक तत्त्व को विस्मृत कर देते हैं, अपनी–अपनी ढपली अपना–अपना राग अलापने लगते हैं, अपने से भिन्न विचार रखने वालों की भावनाओं की ओर से आंख मूंद लेते हैं, उनकी उपेक्षा, अवहेलना, तिरस्कार, भर्त्सना, निंदा आदि में ही लगे रहते हैं, या उनका शोषण, उत्पीड़न आदि करने लगते हैं तो प्रगति अवरुद्ध हो जाती है और सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय अवनति एवं पतन के द्वार खुल जाते हैं। उनकी दलबंदियों एवं गुटबंदियों के प्रताप से उनकी विकृत राजनीति एवं अर्थनीति धर्म एवं मानवीयता जैसे निर्मल तथा सर्वहितोपकारी क्षेत्रों पर भी हावी हो जाती है – कभी–कभी तो द्वेषपूर्ण दोषारोपण, कुत्सित लांछनों, अपशब्दों, जाति या धर्म से बहिष्कार की धमकियां आदि हिंसक वैर–विरोध एवं आतंकवादी उपायों का आश्रय लेकर उक्त पवित्र क्षेत्रों को भी विकृत एवं निरर्थक बना डालती है।

ऐतिहासिक परिदृश्य

भारतीय इतिहास के मध्य काल (लगभग 1000–1800 ई.) में अनेक बाह्य एवं आन्तरिक कारणों से भारतीय समाज में ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र रूपी वर्णव्यवस्था तो जन्मतः रूढ़ हुई ही, प्रत्येक वर्ण में अनगिनत जातियाँ–उपजातियाँ–अवान्तर जातियाँ तथा प्रायः प्रत्येक धर्म परम्परा में अनेक सम्प्रदाय–उपसम्प्रदाय–पंथ–उपपंथ आदि भेद–प्रभेद भी उदित होते, विकसित होते और रूढ़ होते चले गये। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी छोटी–सी जाति–उपजाति विशेष, अपना छोटा–सा पंथ–उपपंथ विशेष, अपना ही दल, गुट या वर्ग विशेष सर्वोपरि होता चला गया। इस विघटनकारी अभिशाप ने धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय संगठन की कमर तोड़ दी है और उसके टुकड़े–टुकड़े करके धर्म, संस्कृति, समाज एवं राष्ट्र के शरीर को जर्जर कर दिया है। क्या साधु–संत एवं धर्माचार्य, क्या चिन्तक, विचारक एवं साहित्यकार, क्या सामाजिक नेता एवं राजनेता, सब ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस विघटनकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते

दीख पड़ते हैं। नैतिकता–प्रधान मानवीय मूल्यों में अनास्था का ही यह दुष्परिणाम है – अब तो आस्था में ही किसी की आस्था नहीं रह गई है।

तीर्थंकर–युग, चौथेकाल या पुराणकाल की बात छोड़ भी दें, तो गत साधिक अढ़ाई सहस्र वर्षों के शुद्ध इतिहास काल में भी भारतवर्ष में ऐसे अनेक अल्पाधिक काल–क्षेत्र–व्यापी स्वर्णिम युग आये हैं, जब लोकमानस ने मानवीय मूल्यों में सुदृढ़ आस्थापूर्वक स्वयं को ऐसी विघटनकारी प्रवृत्तियों से बचाये रखा, और भेद में अभेद या अनेकता में एकता की सुष्ठु साधना करके सर्वतोमुखी उत्कर्ष सम्पादित किया है तथा सम्यक् पुरुषार्थ द्वारा ऐहिक एवं पारमार्थिक स्व–पर कल्याण का साधन किया है। परन्तु भेद में अभेद या अनेकता में एकता की इस भावना के पनपने में आज सबसे बड़ा बाधक कारण वर्तमान में प्रचलित जातिवाद एवं जाति–उपजाति प्रथा है। तारीफ यह है कि इस जाति प्रथा के वर्तमान रूप को अनादि–निधन घोषित किया जाता है, और सज्जातित्व के आवरण में सजातीयत्व का नारा बुलन्द किया जाता है।

श्रमण परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर (छठी शती ई.पू.) के उदय के बहुत पूर्व भारत में नवोदित वैदिक–ब्राह्मण परम्परा ने कार्य विभाजन की सुविधा की दृष्टि से समाज में चतुर्वर्ण व्यवस्था प्रचलित कर दी थी, किन्तु वह कर्मतः एवं परिवर्तनीय रही, जन्मतः और अपरिवर्तनीय नहीं। श्रमण परम्परा ने भी उसे इसी दृष्टि से और इसी रूप में स्वीकार कर लिया, यद्यपि वह श्रमण–निर्ग्रन्थ संस्कृति की अभेदपरक आत्मा के पूर्णतया अनुकूल नहीं थी। यह व्यवस्था उसी रूप में भारतीय समाज में मौर्यकाल के प्रायः अन्त (लगभग 200 ई.पू.) पर्यन्त चलती रही; स्वयं वैदिक परम्परा में औपनिषदिक आत्मविद्या के प्रचारक तथा नवोदित शिवोपासक भी याज्ञिक हिंसा, वैदिक कर्मकाण्ड और वर्णादिक के आधार पर सामाजिक भेदभाव के विरोधी थे, अतः उनमें भी वर्णव्यवस्था श्रमणों जैसे सीमित रूप में ही अंगीकृत रही। किन्तु मौर्योत्तर काल में, एक ओर तो उत्तर भारत की केन्द्रीय (मगध–मालव) राज्यसत्ता ब्राह्मणकुलोत्पन्न शुंग एवं कण्व नरेशों के हाथ में आ गई, जिन्होंने जोर–शोर से ब्राह्मण धर्म पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया और श्रमणों पर भरसक अत्याचार किये। परिणाम स्वरूप बौद्ध समुदाय की तो अपार क्षति हुई ही, जैन संघ भी उत्तर भारत में पर्याप्त निर्बल हो गया – भद्रबाहु श्रुतकेवलि की परम्परा के मुनि तो 4थी शती ई.पू. के मध्य के लगभग ही बहुत बड़ी संख्या में दक्षिण के कर्नाटक आदि देशों की ओर बिहार कर गये थे, स्थूलिभद्र की परम्परा के अवशिष्ट

साधु भी मालवा तथा वहां से भी गुजरात–सौराष्ट्र की ओर चले गये। दूसरी ओर, ईरानी, यूनानी, पह्लव, शक, मुरुण्ड, कुषाण आदि विदेशी जातियाँ उत्तरी सीमान्तों की ओर से प्रविष्ट होकर इस देश में यत्र–तत्र बसने और अपनी राज्यसत्ताएं स्थापित करने लगी थीं। हूण, अरब, तुर्क, मंगोलों आदि के रूप में यह सिलसिला 13वीं शती तक चलता रहा, बीच में गुप्त युग (ल. 320–550 ई.) में भारतीय राज्यसत्ता प्रबल हो भी उठी तो वह भागवत धर्मानुयायी रही, पुराणग्रन्थ, स्मृति शास्त्र आदि रचे गये और जनता ब्राह्मणवाद, वर्णाश्रम, जातिपांति के बन्धनों में जकड़ती चली गई। गुप्तोत्तर काल, विशेषकर राजपूत युग, में यह प्रक्रिया और अधिक बलवती होती गई और मध्ययुगीन मुस्लिम शासनकाल में तो यह बंधन अपनी चरमावस्था को पहुंच गये।

परन्तु, दक्षिण भारत के अधिकांश भाग में क्योंकि मूलसंघी निर्ग्रन्थ जैन धर्म का ही मुख्यतया वर्चस्व एवं प्राधान्य रहा, वहां का सामाजिक संगठन लगभग 1500 वर्ष पर्यन्त प्रायः वैसा ही रहता रहा जैसा कि मौर्य काल तक उत्तर भारत में रहा था अर्थात् चतुर्वर्ण तो शनैः–शनैः स्वीकार हो गये, किन्तु कर्मतः तथा परिवर्तनीय बने रहे, समाज की एकसूत्रता एवं स्वस्थता भंग नहीं हुई। 12वीं शती में रामानुजाचार्य के वैष्णव सम्प्रदाय के, तदनंतर वीरशैव (लिंगायत) मत के द्रुतवेग से बढ़ते प्रचार–प्रसार, जैन राज्य सत्ताओं तथा बहुभाग जिनधर्मी ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्यों के शनैः–शनैः मत–परिवर्तन, मुसलमानों के प्रवेश आदि कारणों से वह सामाजिक संगठन चरमरा गया और ब्राह्मणवाद जनमानस पर बेतरह छाता चला गया। अतएव दक्षिण में भी उत्तर भारत जैसी जातियां–उपजातियां उत्पन्न होने लगीं। साथ ही, अवशिष्ट उच्चवर्णीय जैनों को वर्ण बाह्य घोषित करके उन्हें 'पंचम' संज्ञा दे दी गयी – अर्थात् वे चतुर्थो (शूद्रों) से भी हीन समझे जाने लगे। चतुर्थ जो पहले से ही अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ एवं निम्न वर्ग था, और जिसमें कृषक, श्रमिक, विभिन्न कर्मकर समूह थे, उसके शेतवाल, कासार, बोगार आदि का बहुभाग पीछे तक जैन बना रहा। ये तथाकथित छोटे लोग सदैव से अधिक धर्मप्राण रहते आये हैं, एकाएकी किसी जोर–जबरदस्ती या प्रलोभन के कारण वे स्वधर्म–परिवर्तन प्रायः नहीं करते। अतएव इधर गत दो–तीन सौ वर्षों में दक्षिण भारत में जो जैन बच रहे वे चतुर्थ और पंचम ही कहलाने लगे। देखा–देखी उन में भी कई जातियां–उपजातियां विकसित हो गई। किन्तु यद्यपि हीनभावना, निर्धनता, अशिक्षा आदि के कारण वे धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण करने के

योग्य नहीं रहे, तथापि उस भू–भाग में जैन धर्म एवं संस्कृति के संरक्षक तथा प्रतिनिधि वे ही बने रहे, और आज भी बने हैं। वर्तमान शती के दिगम्बर जैन मुनियों, आर्यिकाओं आदि में से भी अधिकांश उन्हीं जातियों में उत्पन्न हुए हैं। मध्य एवं मध्योत्तर कालों में दक्षिण भारत में जो अनेक सुधारक एवं निर्गुणी या भक्त संत हुए वे भी अधिकतर इन्हीं वर्गों में उत्पन्न हुए थे। दूसरे, इन चतुर्थ एवं पंचमों में, जो जैन बने रहे और जिनमें कितने ही मूलतः ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुलोत्पन्न भी हैं, परस्पर रोटी–बेटी व्यवहार भी चलता रहा। दक्षिण भारत में उस काल में ब्राह्मण परम्परा के बड़े–बड़े दिग्गज आचार्य भले ही हुए, देश का राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक पतन और सैकड़ों वर्षों की विदेशी–विधर्मी मुसलमानों, फिरंगियों आदि की गुलामी का कारण मुख्यतया वह संकीर्ण असहिष्णु ब्राह्मणवाद ही रहा जिसकी जड़ में जाति–उपजातिवाद का भेद या फूटपरक भूत ही सर्वाधिक सक्रिय रहा।

आज भी स्वतन्त्र सर्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र की भावनात्मक एक–सूत्रता में वही जातिवाद सबसे बड़ी बाधा है। राजनैतिक सम्प्रदायवाद या सियासी फ़िरकापरस्ती का रूप लेकर तथा साथ में आतंकवाद का हथियार अपनाकर तो विघटनकारी तत्त्व और भी भयंकर एवं विध्वंसक हो उठे हैं। अपने छोटे से स्तर पर जैन समाज भी उसी रोग से ग्रस्त होता जा रहा है। देश की जनसंख्या का मात्र एक प्रतिशत होते हुए भी वह इतने सम्प्रदायों–उपसम्प्रदायों–पंथों–उपपंथों–गुरुजनों में तथा इतनी जातियों–अवान्तर जातियों–अल्लों–थोकों आदि में बंटता हुआ ऐसे टुकड़े–टुकड़े होकर रह गया है और सत्त्वहीन होता जाता है कि उसके स्वयं के तथा उसके धर्म एवं संस्कृति के अस्तित्व को ही भयानक खतरा उत्पन्न हो गया है। आवश्यकता है कि प्रबुद्ध समाजचेता समय की गति को पहचानें और विघटनकारी प्रवृत्तियों से समाज की जीवन रक्षा करें। स्मरण रहे कि 'संघे शक्ति कलौयुगे'!

चिन्तनीय

शिथिलोन्मुख जैन साध्वाचार – एक समीक्षा

– श्री अजित प्रसाद जैन

दिगम्बर सम्प्रदाय

अब से 40–45 वर्ष पूर्व तक दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में केवल एक ही आचार्य (चा.च. आचार्य श्री शान्तिसागर म0) व उनके संघस्थ 7 मुनिराज ही थे। गत 40 वर्षों की कालावधि में आचार्यों की संख्या ही बढ़ कर लगभग दो दर्जन हो गई है। ऐसे आचार्य तो हैं ही जो अपने गुरुओं के पट्ट पर आसीन हैं (आ0 शान्तिसागर म0 की परम्परा के तो तीन पट्टाचार्य – तृतीय, पंचम, षष्टम – एक ही समय में विचरण कर रहे हैं), ऐसे भी आचार्य हैं जो उनके किसी चातुर्मास स्थल की समाज द्वारा आचार्य पद पर अभिषिक्त कर दिये गये हैं। इस बीच मुनियों एवं आर्यिकाओं की संख्या तो सैंकड़ों में हो गई हैं। ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाएं, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियां इनके अलावा हैं। ये सब मोक्ष मार्ग के साधक हैं तथा अभिनन्दनीय हैं। यदि साधकों की यह बढ़त दिगम्बर जैन समाज में चरित्र एवं संयम के उन्नयन का द्योतक होती, जैसा कि यह होना चाहिए थी, तो यह गर्व का विषय होती। किन्तु हुआ इसके विपरीत ही। जैन श्रावकाचार की मूलभूत पहचान (रात्रि भोजन एवं अभक्ष्य त्याग तथा अहिंसामय सरल सत्यनिष्ठ जीवन–यापन) ही तेजी से खोती जा रही है। साधकों की संख्या में अभिवृद्धि के साथ–साथ साध्वाचार में भी गिरावट आई है। एक आचार्य श्री तो घ्रणित एवं लज्जाजनक आरोपों से घिरे होने के बावजूद अपने पूजनीय पद पर बने हुए हैं, आर्यिका–दीक्षाएं भी दे रहे हैं, और श्रद्धालु जन उनकी जय–जयकार भी कर रहे हैं।

शिथिलोन्मुख प्रवृत्ति मानव की कदाचित् स्वभावगत कमजोरी है। जैन श्रमण संघ में शिथिलाचार के बीज तो भगवान महावीर के निर्वाण के 162 वर्ष बाद अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु स्वामी के दिवंगत होते ही प्रस्फुटित हो गये थे तथा भगवत् कुन्द–कुन्दाचार्य को श्रमणाचार के शुद्धिकरण तथा मूल आम्नाय की पुनर्प्रतिष्ठापना के लिए एक जिहाद जैसा अभियान ही छेड़ना पड़ा था। चतुर्विध संघ ने भी उन ज्योतिर्धर आचार्य के नाम–स्मरण को भगवान महावीर तथा गौतम गणधर के साथ सर्व मंगलमय घोषित करके उनके महान उपकार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन किया। जैन धर्म की दूसरी शाखा श्वेताम्बर आम्नाय में भी शिथिलाचार की बाढ़ को रोकने के लिए समय–समय पर क्रियोद्धारक संत होते रहे हैं।

पूज्य मुनि श्री सरल सागर म0 आज के उन इने- गिने मुनि पुंगवों में से हैं जो ढाई हजार वर्ष पूर्व गणधरों द्वारा उपदिष्ट तथा **मूलाचार** में निरूपित साधु जीवन को आज के लिए भी श्रमणाचार का आदर्श मानते हैं। हम नहीं जानते कि वे उसे कितना जी पा रहे हैं किन्तु वे पूर्ण आस्था के साथ उसे अपने जीवन में उतारने की आकांक्षा अवश्य करते हैं। मुनि श्री ने दिगम्बर जैन श्रमणाचार में वर्तमान में दृष्टिगोचर हो रही विकृतियों एवं विसंगतियों से व्यथित होकर अपनी नवीनतम कृति **नग्नत्व समीक्षा** में एक कुशल सर्जन की तरह श्रमणाचार के शरीर की चीड़—फाड़ करके तमाम गिलाज़त को बाहर निकाल कर रख दिया है। प्रस्तावना में मुनि श्री ने यह भी स्पष्ट किया है कि **इस पुस्तक में उन्होंने प्रत्यक्ष घटित घटनाओं एवं अनुभूतियों का ही संकलन किया है।**

पुस्तक में नग्नत्व (अर्थात् आज के दिगम्बर जैन मुनि के आचार) की विवेचना नौ काण्डों (अध्यायों) में की है। काण्डों के शीर्षक कुछ अटपटे लगते हैं पर काण्ड को पूरा पढ़ जाने पर मुनि श्री का आशय स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में, मुनि श्री का कहना है — "आज के अधिकांश मुनि तन से तो नग्न (निर्वस्त्र) हो गए हैं पर मन से नहीं हो पाये हैं। उनके मन में धन की वासना बनी हुई है तथा दृष्टि धन प्रधान है, भक्त यदि धनवान हो तो विशेष कृपा पात्र हो जाता है। ऐसे साधु चातुर्मास आदि में व्यर्थ के रईसी खर्चे करा कर मानो अपने ही वैभव का प्रदर्शन देख कर अपने अहं की तुष्टि करते हैं। कोई—कोई साधु अधिक उपवास करने की क्षमता अर्जित किये हुए है, कोई विशेष ज्ञानवान है और कोई प्रवचन कुशल है। ऐसे साधु तो बिरले ही हैं जिनमें ये तीनों गुण हों, पर ऐसे भी हैं जो इन तीनों से गरीब हैं। वे केवल दया के पात्र ही हो कर रह गए हैं, वे बहुमान के पात्र नहीं बनते। आज अनेक साधु बहु आरम्भ और बहु परिग्रह में लिप्त हैं जो स्पष्ट ही नरक गति का कारण है। कुछ साधु तीर्थ क्षेत्रों पर स्थायी रूप से ही निवास करने लगे हैं तथा श्रावकों को अन्य स्थानों से आकर उनकी आहार व्यवस्था करनी पड़ती है। कुछ स्वच्छन्दियों द्वारा यह अंध परम्परा डाली जा रही है। यह आगम सम्मत नहीं है।

आज दिगम्बर मुनियों के निर्देशन व सान्निध्य में राजनेताओं का सम्मान किया जा रहा है, यहाँ तक कि उनको प्रतिष्ठित तीर्थंकर मूर्तियाँ भी सम्मान स्वरूप भेंट की जा रही हैं। हिंसा के समर्थक राजनेताओं की खुशामद करना भी राजनीति ही है जिसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। एक दिगम्बर मुनि (महावीर जयन्ति महोत्सव में आमन्त्रित) मुख्य मंत्री जी के लगे गुणगान गाने, उनकी झूठी सच्ची विशेषताएं बताने, उनसे धन हथियाने के लिए। मंत्री जी के बोलने का नम्बर आया, तब उन्होंने कहा— 'यहाँ तो उल्टा

हो रहा है, मैं तो यहाँ महावीर के गुणगान सुनने आया था, लेकिन यहाँ तो मुझे मेरे ही गुणगान सुनने को मिले।'....साधु की नग्नता आज उपहासादि का साधन बन गई है। अनेक साधु तन से नग्न होते हुए भी अपरिग्रही नहीं. ...आधुनिक सुविधाओं का भी उपभोग करते हैं,.......**नग्नत्व त्याग का प्रतीक है, ग्रहण का नहीं।**

बहुत से साधु आज क्षेत्रोद्धार के कार्यों में सक्रियता से अपने नग्नत्व का दुरुपयोग कर रहे हैं। उनकी सक्रियता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म प्रभावना आदि के कार्यों में समाज इनके सक्रिय सहयोग के बिना पंगु है। उसकी इस पंगुता का लाभ उठा रहा है प्रसिद्धि की चाह में अटका तथा अपने लक्ष्य से भटका साधु। साधु अपने नाम से क्षेत्रों पर नव निर्माण कराने व नए क्षेत्रों का निर्माण कराने में आए दिन करोड़ों रुपयों की योजनाएँ बना कर समाज से कार्यान्वित करा रहा है तथा क्षेत्रोद्धारक की उपाधि लगा कर अपने को गौरवान्वित कर रहा है।

नग्नत्व एक ऐसा उज्जवल वस्त्र है जिसमें छोटे से छोटा दाग (दोष) भी दूर से ही दिखाई पड़ जाता है। दिगम्बरत्व से परिग्रह का कोई मेल नहीं है। नग्नत्व को निर्दोष बनाए रखने के लिए संसार, शरीर और भोगों से पूर्ण उदासीनता होना परम आवश्यक है.......।"

मुनि श्री की **समीक्षा** रोचक है, चिन्तनीय है तथा मोक्ष मार्ग के साधकों को आत्मालोचन का सुअवसर प्रदान करती है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय

इस प्रसंग में हम एक अनन्य चिन्तक विद्वान मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर म0 के उद्‌गार (**रत्नराज**, जुलाई 1996, के अंक में प्रकाशित उनके लेख "दीक्षा मूल्यों की अन्तर्परख" से) नीचे उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने अपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधुओं को परिलक्षित करके लिखा है – "इस समय जैन समाज में करीब दस हजार साधु–साध्वियां हैं........ इस सदी में धुआंधार दीक्षाएं हुई हैं. .....तत्त्व बोधि को कितने उपलब्ध हुए यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु **दीक्षा के मूल्यों में निरन्तर गिरावट आई है।** साधु संस्था का समयीकरण और आधुनिकीकरण हुआ है। **सामयिक परिवर्तन अपेक्षित है पर उतना ही जितना उचित हो।**......मेरी दृष्टि में एक गुरू जब तक पूरी तरह आत्म विश्वस्त न हो जाय कि मैं अध्यात्म को उपलब्ध हूँ उसे तब तक किसी को भी अपना शिष्य बनाने की सोचनी भी नहीं चाहिए।...... मैं ऐसे साधुओं को भी जानता हूँ जो पांच–पांच सात–सात हजार में खरीद कर साधु बनाए गए हैं, कईयों के घर माहवारी भी पहुंचती है। कई साधु–साध्वी तो ऐसे भी देखने को मिले हैं जो पूरी

तरह वेशधर ही हैं और इस वेश में वे अपनी घर–गृहस्थी की समस्याएँ सुलझाते हैं।.....साधु जीवन अब साधु कम, सांसारिक और प्रवृत्तिमूलक अधिक हो गया है। **क्रियाकाण्ड के विरोध में जन्मा धर्म अब खुद ही एक क्रियाकाण्ड बन गया है।**..... आज साधुओं द्वारा दृश्य और श्रव्य साधनों का भी उपयोग होने लगा है। धन से मानो सब का ही सम्बन्ध है। जो जितना बड़ा मुनि उसकी आर्थिक पहुँच भी उतनी ही विस्तृत है। कई साधु–साध्वियाँ तो अपने पास ही धन संग्रह करने लगे हैं तो कईयों के अपने–अपने सम्बन्धित सेठ–साहुकारों के पास धन रखे जाने के तथ्य सामने आए हैं। मेरी दृष्टि में तो **हर किसी को मुनि बनने की प्रेरणा देने के बजाय उसे गृहस्थ सन्त बनने की प्रेरणा दी जानी चाहिए।**......बीसवीं सदी के चर्चित अध्यात्म साधक श्रीमद् राजचन्द्र ने मुनि दीक्षा लेने के बजाय धोती और बंडी में ही मुनित्व का वरण किया, अध्यात्म को बखूबी जिया और देहातीत जीवन जीते हुए अन्ततः आत्म समाधि को उपलब्ध हुए।

घर में रह कर मुनित्व को जीओ; उसके उपरान्त यदि दीक्षा होती है तो भी दीक्षा केवल उन्हीं को दी जानी चाहिए जो इसकी पात्रता रखते हों।"

सन्देश

मुनि श्री चन्द्रप्रभ सागर जी का उपर्युल्लिखित सत् परामर्श जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के पूज्य आचार्यों द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य है। श्रमणाचार में वर्तमान में परिलक्षित हो रही शिथिलता के पनपने तथा बढ़ते जाने का एक बहुत बड़ा कारण अपरिपक्व मुनि दीक्षाएं ही हैं। दिगम्बर मुनि वेश साधु जीवन का शिखर बिन्दु है। नग्नता वीतरागता, अपरिग्रहता, जितेन्द्रियता, कषायों की मन्दता तथा संसार–देह से वैराग्य का प्रतीक है जिसमें गृहस्थ तीर्थंकर महाप्रभु के साधनारत जीवन्त रूप को देखता है। उपरोक्त लक्षणों में से किसी की भी कमी से दिगम्बर मुनि वेश दूषित होता है, उपहासादि को प्राप्त होता है। हमारी समझ में जैन साध्वाचार की सचेल क्षुल्लक–ऐलक श्रेणियों में भी आध्यात्मिक विकास की भारी सम्भावनाएं हैं और जब तक साधक व उसके गुरू पूर्ण रूप से आश्वस्त न हो जाएं कि साधक तप–संयम के दीर्घ कालीन अभ्यास से उपरोक्त गुणों को उपलब्ध हो गया है, उसे दिगम्बर मुनि दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। दिगम्बर मुनि साधु जीवन के चरम शिखर हैं, त्रिकाल वन्दनीय साधु परमेष्ठी हैं। उनकी गरिमा में यदि कोई कमी परिलक्षित होती है तो हमारी आस्था को ठेस लगती है।

मुनि श्री का यह सुझाव भी चिन्तनीय है कि आज के बदले सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में ढाई हजार वर्ष पूर्व निर्धारित श्रमणाचार में सामयिक परिवर्तन संशोधन अपेक्षित हैं। क्या परिवर्तन करना समयोचित होगा, यह तय करना हमारे वरिष्ठ आचार्यो व मुनियों का काम है।

✦✦✦

कीर्ति–स्तम्भ : एक नयी परम्परा

– श्री अंशु जैन 'अमर'

दिनांक 20 जून, 2018 ई., को वाट्सएप पर एक धार्मिक सामाजिक ग्रुप में मैंने एक मैसेज पढ़ा, जिसमें लिखा था कि आचार्य विद्यासागर महाराज ने 30 जून, 1968, को दीक्षा ली थी। दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण होने पर 30 जून, 2018, को आचार्य विद्यासागर महाराज की दीक्षा जयन्ती स्वर्णिम संयमोत्सव के रूप में उनके दीक्षा–स्थान अजमेर के फव्वारा सर्किल स्थित बड़े–धड़े की नसियां में मनाया जायेगा। इस अवसर पर दीक्षा–स्थान पर 65 फीट ऊंचे एक कीर्ति–स्तम्भ का अनावरण भी मुनि सुधासागर महाराज ससंघ के सान्निध्य में किया जायेगा। प्रोजेक्ट हेड श्री आर.बी. मेहता ने बताया कि कीर्ति–स्तम्भ पर आचार्य विद्यासागर महाराज का पूरा जीवन–परिचय जन्म से लेकर बाल्यकाल, दीक्षा और उनके द्वारा दी गयी दीक्षा, शिष्यों के साथ आचार्य श्री से जुड़े अन्य वृतान्त भी सचित्र अंकित किये जायेंगे। कीर्ति–स्तम्भ के निर्माण में लगभग एक वर्ष का समय और लगभग एक करोड़ रुपये लगा। एक अन्य वाट्सएप मैसेज में भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव की भांति आचार्य भगवन् द्वारा किए गए कार्यों को सभी वर्ग के नागरिकों तक पहुंचाने के उद्देश्य से सभी नगरों एवं राज्यों में जैन समाज द्वारा एक–एक कीर्ति–स्तम्भ की स्थापना किये जाने का भी उल्लेख किया गया है।

दिनांक 2 जुलाई 2018 को एक अन्य वाट्सएप मैसेज में कीर्ति–स्तम्भ के अलावा 'संयम स्वर्ण भवन' ('आचार्य विद्यासागर निलय') के लोकार्पण, डाक टिकट जारी किये जाने तथा आचार्य श्री का नाम सबसे ज्यादा दिगम्बर मुनि दीक्षा (दिनांक 18–12–1975 से 31–7–2015 तक 329 मुनि दीक्षाएं) देने के लिए श्री जे.के. जैन, जयपुर, द्वारा **गोल्डन बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड** में दर्ज कराये जाने का समाचार भी प्रसारित हुआ है।

जैन धर्मानुयायी होने के नाते आचार्य श्री की दीक्षा जयन्ती स्वर्णिम संयमोत्सव मनाये जाने के समाचार से प्रसन्नता हुई कि 50 वर्ष की दीर्घ अवधि से आज इतनी वृद्धावस्था के बावजूद आचार्य श्री अपने ज्ञान, तप, चारित्र और उपदेशों द्वारा समाज को मार्गदर्शन व आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं। किन्तु इतिहास विषय का शोधार्थी होने के कारण उपरोक्त समाचारों में "कीर्ति–स्तम्भ" शब्द का प्रयोग अटपटा एवं समझ से परे लगा।

भारतीय साहित्य में "कीर्ति" शब्द का अर्थ 'यश' तथा यश को विस्तृत अथवा प्रसारित करने वाले किसी भी निर्माण कार्य से है। कीर्ति अथवा यश संज्ञा विशेष के सन्दर्भ में होती है। इस कीर्ति–स्तम्भ का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष अर्थात आचार्य श्री के यश से सम्बन्धित है। गृहस्थ जीवन, राग–द्वेष, क्रोध–मान, माया, लोभ आदि का त्याग करने वाले अत्यन्त अपरिग्रही तपस्वी दिगम्बर जैन आचार्य द्वारा अपने यश की कामना और यश को अक्षुण्ण रखने हेतु कीर्ति–स्तम्भों की स्थापना ने सोचने पर मजबूर कर दिया।

भारतीय स्थापत्य एवं वास्तुकला के इतिहास में सामान्यतः तीन प्रकार के स्तम्भ निर्माण मिलते हैं :– (1) विजय स्तम्भ – ये स्तम्भ राजा अथवा शासकों द्वारा अपने किसी विशिष्ट शत्रु राजा/आक्रांता पर विजयोपरान्त अपनी उपलब्धि का वर्णन करते हुए शौर्य प्रदर्शन स्वरूप स्थापित किये जाते थे। जैसे कि महाराणा कुम्भा द्वारा गुजरात नरेश महमूद पर विजय के पश्चात चित्तौड़ के किले में स्थापित विजय–स्तम्भ।

(2) कीर्ति–स्तम्भ – ये स्तम्भ राजा अथवा शासकों द्वारा अपने शासन काल में की गयी विजयों, दिग्विजयों एवं सामाजिक कार्यों व उपलब्धियों का वर्णन करने वाले अपने यश–कीर्ति के प्रसार के उद्देश्य से स्थापित किये जाते थे। भारत में उपलब्ध अधिकांश स्तम्भ कीर्ति–स्तम्भ ही हैं। उदाहरणार्थ – गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, चन्द्र राजा का महरौली का लौह स्तम्भ, आदि।

(3) मान–स्तम्भ – जैन परम्परानुसार तीर्थंकर प्रभु के समवशरण के सम्मुख प्रवेश द्वार के भीतर मान–स्तम्भ स्थित होते हैं। मान–स्तम्भ जैन मन्दिरों, जिन्हें तीर्थंकर के समवशरण का प्रतीक माना जाता है, के सम्मुख प्रतिष्ठा सहित स्थापित किया जाता है। जैन मान्यतानुसार मान–स्तम्भ के दर्शन मात्र से बड़े से बड़ा अहंकार–मान विगलित हो जाता है। मान–स्तम्भों में जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति से सम्बन्धित अंकन अथवा चित्रांकन होता है। मान–स्तम्भ विशुद्व धार्मिक निर्माण है, इसका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से नहीं होता है। मान–स्तम्भ मूडबिद्री व श्री महावीर जी आदि अनेक दिगम्बर जैन मन्दिरों में देखे जा सकते हैं।

आचार्य श्री कोई राजनैतिक व्यक्ति नहीं है, अतः राजनैतिक उपलब्धियों की अपेक्षा से आचार्य श्री के कीर्ति–स्तम्भ के निर्माण का औचित्य प्रतीत नहीं होता। आचार्य श्री के स्तम्भ मान–स्तम्भों की श्रेणी में भी नहीं आते हैं। आचार्य श्री द्वारा 50 वर्ष पूर्व ही माया–मोह एवं समस्त

सांसारिक परिग्रहों का त्याग कर तपस्वी जीवनचर्या का निर्वहन किया जा रहा है। ऐसे में, सामाजिक व धार्मिक क्रिया–कलापों/उपलब्धियों के यश को विस्तृत/प्रसारित करने अथवा भविष्य के लिए अक्षुण्ण बनाये रखने की कामना, आचार्य श्री की महान तप–साधना से मेल नहीं खाती।

जैन धर्म में तीर्थंकर देवों की ही पूजा–उपासना का विधान है। जैन वास्तुकला में तीर्थंकरों के अतिरिक्त भरत एवं बाहुबलि स्वामी की प्रतिमाओं को ही जिन मंदिरों में स्थान मिला है। दिगम्बर आम्नाय में अन्य केवल ज्ञानियों के केवल चरण–चिह्न स्थापित किये जाने की प्रथा मिलती है। प्राचीन आचार्यों के भी केवल चरण–चिह्न मिलते हैं। आचार्य नेमिचन्द्र तथा पंडित आशाधर के प्राचीन प्रतिष्ठा–पाठों में आधुनिक आचार्यादि में पूर्वाचार्यों के समान गुणों का अवलोकन कर उनके चरण–युगल या चरण–पादुका स्थापित करने का विधान किया गया है। मोक्ष–गमन कर सिद्ध भगवान हुए महामुनि तथा समाधि–मरण कर स्वर्गलोक–गमन करने वाले अन्य मुनि राज भी श्रद्धा व प्रेरणा के केन्द्र हैं, पर उनके केवल चरण–चिह्न उनके मोक्ष–स्थल या समाधि–स्थल पर स्थापित किये जाने की परम्परा है। प्राचीन काल के किसी आचार्य या मुनिराज का कोई "कीर्ति–स्तम्भ" निर्मित किये जाने का उल्लेख या उदाहरण नहीं मिलता है।

पूज्य आचार्य श्री के जीवन, गुरु–शिष्य परम्परा, प्रवचन आदि के प्रचार पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। लेकिन प्रचार के तरीके अर्थात कीर्ति–स्तम्भों की नगर–नगर स्थापना विचारणीय है। प्रचार के और भी कई तरीके हो सकते हैं, यथा – वर्ष 1996 में 04 खण्डों में प्रकाशित **महाकवि आचार्य विद्यासागर ग्रंथावली**। पहले भी ग्रन्थों, अभिलेखों आदि में रचना, स्थापना के संदर्भ से पूर्व आचार्यों–मुनियों का परिचय, गुरु–शिष्य परम्परा का उल्लेख आदि मिलता रहा है।

परम्परानुसार पूर्ववर्ती आचार्यों के कीर्ति–स्तम्भों की अनुपस्थिति में आचार्य श्री के कीर्ति–स्तम्भ देखकर भावी पीढ़ी यह स्वाभाविक प्रश्न करेगी कि क्या आचार्य श्री से पूर्ववर्ती कोई अन्य जैनाचार्य कीर्ति, चारित्र, तप, ज्ञानादि के आधार पर आचार्य श्री के समकक्ष नहीं ठहरता था? क्या ये कीर्ति–स्तम्भ आचार्य श्री के यश–कीर्ति से कहीं अधिक पूर्ववर्ती आचार्यों की अवमानना का प्रतीक प्रतीत नहीं होते हैं?

आचार्य श्री द्वारा वर्ष 1975 से 2015 के मध्य 329 मुनि दीक्षाएं दी गयीं, श्री जे.के. जैन की यह जानकारी सही हो सकती है। परन्तु जैन धर्म के इतिहास में किसी अन्य पूर्वाचार्य द्वारा कितनी मुनि दीक्षाएं दी गयीं तथा उन मुनि दीक्षाओं की संख्या 329 से कम थी अथवा आचार्य श्री द्वारा अब तक के इतिहास में सबसे अधिक मुनि दीक्षाएं दी गयीं, इसका क्या आधार–स्रोत है, ज्ञात नहीं है। श्री जे.के. जैन ही इस पर बेहतर प्रकाश डाल सकते हैं। ऐसे कीर्तिमानों से पूर्ववर्ती महान जैन आचार्यों की अवमानना के साथ–साथ समकालीन आचार्यों में पात्रता गुणों की अनदेखी कर अधिकाधिक मुनि–दीक्षा देने की एक नयी होड़–दौड़ शुरू हो जायेगी।

कीर्ति–स्तम्भ की स्थापना तथा दीक्षा जयंती स्वर्णिम संयमोत्सव पर आचार्य श्री का मौन एवं गुरु–भक्ति व श्रद्धा के अतिरेक में मुनि सुधासागर महाराज की उपस्थिति से उनकी अनुमोदना प्रतीत होती है। श्रेष्ठत्व स्थापित करने हेतु कीर्ति–स्तम्भों की स्थापना इस शती की नयी देन व परम्परा है।

शायद बेहतर होता कि सम–सामायिक वैश्विक समस्याओं से सम्बन्धित जैन धर्म के शाश्वत मूल सिद्धान्तों/उपदेशों को सरल भाषा में उत्कीर्ण व प्रसारित करवाकर कीर्ति–स्तम्भों को स्थापित कराया जाता, जिससे समस्त जैनाचार्यों के प्रतीक जैन धर्म की यशोकीर्ति दिग्–दिगान्तर तक फैलती। साधु–जनों और सुधी–जनों को इस पर विचार करना होगा।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय तिथि दर्पण के अनुसार आषाढ़ शुक्ल पंचमी (17 जुलाई) को भी यह जयंती मनायी गयी।

✦✦✦

यात्रा संस्मरण

सरहिंद के टोडरमल जैन की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता

– डॉ. अनेकान्त कुमार जैन

2016 में महावीर जयंती के दिन मुझे पंजाब के फतेहगढ़ साहिब में स्थित 'गुरुग्रन्थ साहिब वर्ल्ड यूनिवर्सिटी' में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में जैन दर्शन पर व्याख्यान देने हेतु जाने का अवसर प्राप्त हुआ। फतेहगढ़ साहिब जिला सिखों की श्रद्धा और विश्वास का प्रतीक है। पटियाला के उत्तर में स्थित यह स्थान ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। सिखों के लिए इसका महत्व इस लिहाज़ से भी ज्यादा है कि यहीं पर गुरु गोविंदसिंह के दो बेटों को सरहिंद के तत्कालीन फौजदार वज़ीर ख़ां ने दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था। उनका शहीदी दिवस आज भी यहाँ लोग पूरी श्रद्धा के साथ मनाते हैं। फतेहगढ़ साहिब जिला को यदि गुरुद्वारों का जिला कहा जाए तो गलत नहीं होगा। यहाँ पर अनेक गुरुद्वारे हैं जिनमें 'गुरुद्वारा फतेहगढ़ साहिब' का विशेष स्थान है।

वहाँ के जागरूक शोध अध्येताओं ने मुझसे जैन दर्शन पर बहुत अभिरुचि प्रकट की। वे मुझे वहाँ के उस प्रसिद्ध गुरुद्वारे ले गए जहाँ गुरु गोविन्दसिंह जी के दोनों पुत्रों को वहां के नवाब ने दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था। इसी सन्दर्भ में उन्होंने वहाँ के दीवान टोडरमल जैन की उदार दृष्टि की जो कथा सुनाई वह मुझे पता ही नहीं थी। उन्होंने बताया कि तीन सौ वर्ष पहले सरहिंद में गुरु गोविंदसिंह जी के दो पुत्रों को दीवार में चुनवाने के बाद उनके व दादी माँ के पार्थिव शरीरों को अंतिम संस्कार के लिए नवाब जगह नहीं दे रहा था। उसने शर्त रखी कि अंतिम संस्कार के लिए जितनी जगह चाहिए उतनी जगह स्वर्ण मुहरें बिछा दो। वहाँ के सुप्रसिद्ध नगर सेठ टोडरमल जैन ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और स्वर्ण मुद्राएं बिछा दीं। नवाब का लालच बढ़ गया और फिर उसने कहा कि स्वर्ण मुद्राएं खड़ी करके बिछाओ, लिटा कर नहीं। टोडरमल जी ने यह शर्त भी मान ली और खड़ी स्वर्ण मोहरें बिछा दीं, तथा अंतिम संस्कार हेतु जगह ली।

नवाब से स्वर्ण मोहरें बिछाकर भूमि प्राप्त करने वाले दीवान टोडरमल जैन का नाम तीर्थ–भूमि सरहिंद से भी जुड़ा है। सामाना में जन्मे व माता चक्रेश्वरी देवी के उपासक टोडरमल जैन ज़मीनी मामलों के

जानकार होने के कारण सरहिंद के नवाब वज़ीर ख़ां के दरबार में दीवान के पद पर आसीन हुए। उन्होंने नवाब से सोने की मोहरों के बदले भूमि लेकर उन तीनों महान विभूतियों का स्वयं अंतिम संस्कार किया। उसी स्थान पर फतेहगढ़ साहिब में 'गुरुद्वारा श्री ज्योति स्वरूप' बना हुआ है जिसके बेसमेंट का नाम 'दीवान टोडरमल जैन हाल' है।

उसके बाद वे वहाँ स्थित जैन मंदिर ले गए जहां जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ जी की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी का एकमात्र ऐतिहासिक प्राचीन मंदिर सरहिंद शहर में चंडीगढ़ रोड पर स्थित है। यहाँ 12वीं सदी से लगातार माता जी के श्रद्धालु, विशेषतः खंडेलवाल बंधु, अपनी कुलदेवी के रूप में माता जी की पूजा अर्चना के लिए आते रहे हैं। पास में ही तीर्थंकर आदिनाथ का एक सुन्दर श्वेताम्बर मंदिर भी है जहाँ भगवान आदिनाथ के दर्शनों का लाभ भी मिलता है।

उन्होंने बताया कि 12वीं शताब्दी में मारवाड़ में भीषण अकाल के कारण पंजाब की ओर लोगों ने पलायन किया। जैन खंडेलवाल परिवारों का एक जत्था कांगड़ा में विराजित भगवान ऋषभदेव के दर्शनों के लिए बढ़ रहा था जो सरहिंद में एक रात्रि के लिए रुका। अगली सुबह अधिष्ठात्री कुलदेवी की पूजन शिला वाली बैलगाड़ी आगे नहीं बढ़ी। दूसरी रात्रि भी वहीं रुकना पडा। तब आकाशवाणी सुनाई दी – 'मेरा स्थान आ गया है। मेरा भवन यहीं बनवाया जाये'। भक्तों ने वहीं पर मंदिर बनवाया और स्वयं भी सरहिंद एवं पंजाब के अन्य शहरों में बस गए परन्तु सरहिंद में माता चक्रेश्वरी देवी के इस स्थान पर निरंतर आते रहे।

मैंने वहाँ देखा कि तीर्थ परिसर में विशाल धर्मशाला, विश्राम घर, खुले लॉन, भोजनशाला आदि की सुचारु व्यवस्था है। अपने गौरवपूर्ण व स्वर्णिम इतिहास तथा श्रद्धा का व्यापक आधार होने के कारण माता चक्रेश्वरी देवी के इस स्थान को अब अखिल भारतीय जैन तीर्थ होने का भी गौरव प्राप्त है। वहीं दीवार पर टोडरमल जी के दो चित्र भी बने हैं।

इस पूरी कहानी से यह पता चलता है कि जैन समाज अपने से अन्य धर्म और धार्मिकों के प्रति कितनी उदार दृष्टि रखता आया है। जैनों द्वारा इस प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता के और भी हजारों किस्से हैं।

एसोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, जैन दर्शन विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, कुतुब सांस्थनिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

✧✧✧

दौलतराम जी की अज्ञात कृति का जीर्णोद्धार

– प्रो. वीर सागर जैन

हिन्दी–साहित्य के इतिहास में 'दौलतराम' नाम के अनेक विद्वान हो चुके हैं, जिनमें से नौ दौलतरामों का परिचय मैं अपने पी–एच.डी. के शोध–प्रबन्ध में लिख चुका हूं; किन्तु उनमें से दो दौलतराम ही जैन समाज में अधिक लोकप्रिय हैं – एक तो **'छहढाला'** वाले दौलतराम जी और दूसरे **'पद्मपुराण–भाषावचनिका'** वाले दौलतराम जी।

किन्तु इन दो दौलतरामों के अतिरिक्त एक तीसरे दौलतराम और भी हैं जिनका जैन साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान माना जाना चाहिए। इन्हें दौलतराम वर्णी या बाबा दौलतराम वर्णी के नाम से जाना जाता है। इनका समय विक्रम की बीसवीं सदी है। साहित्य–जगत में इनकी चार–पांच लघु कृतियां ही विशेष ज्ञात रही हैं – नैनागिरी–पूजा, चम्पापुर–पूजा, पावापुर–पूजा, ग्यारह प्रतिमा, आदि; किन्तु अब श्री सुरेश जैन (रिटा. आई.ए.एस.), भोपाल, ने जो कि इस समय नैनागिरि तीर्थक्षेत्र (मध्य प्रदेश) के अध्यक्ष भी हैं, बहुत अधिक शोध–खोज करके उनकी एक और विशाल कृति **'गोम्मटसार–छन्दोदय'** को खोज निकाला है। न केवल खोज निकाला है, अपितु जैन दर्शन के उद्‌भट विद्वान पं. प्रमोद जैन, जयपुर, से उसका व्यवस्थित सम्पादन भी कराया है और फिर उसे भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, से स्तरीय ढंग से प्रकाशित भी करा दिया है। इस प्रकार एक महान ग्रन्थ के जीर्णोद्धार का शुभ कार्य सम्पन्न हुआ है।

'गोम्मटसार–छन्दोदय' की प्रकृति वैसी ही है जैसी कि बनारसीदास कृत **'समयसार नाटक'** की है अथवा वृंदावनदास कृत **'प्रवचनसार–भाषा'** की है अथवा भैया भगवतीदास कृत **'द्रव्यसंग्रह–पद्यानुवाद'** की है। इस प्रकार के प्रयोग पूर्व में अनेक हिन्दी–जैन कवियों न किये हैं और इनका जैन–आगमों के संरक्षण एवं प्रचार–प्रसार में बड़ा भारी योगदान माना जाता है। हिन्दी–जैन कवियों की ये रचनायें साहित्यिक दृष्टि से भी इतनी मधुर रही हैं कि सहज ही जन–जन का कंठहार बन गईं।

'गोम्मटसार–छन्दोदय' नामक इस अद्भुत कृति का मूलाधार वस्तुतः अकेला **'गोम्मटसार'** नहीं है, अपितु उसकी केशव वर्णी कृत संस्कृत–टीका **'जीवतत्त्वप्रदीपिका'** एवं पं. टोडरमल कृत हिन्दी–टीका **'सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका'** भी इसके मूलाधार रहे हैं और इन तीनों के आधार से ही इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है, जैसा कि प्रत्येक अधिकार की और सम्पूर्ण ग्रन्थ की ही अन्तिम प्रशस्ति (पुष्पिका) में कवि ने स्वयं स्पष्ट लिखा है। इसी बात को उन्होंने (अंतिम प्रशस्ति, छंद 41 से 45,) में छन्दबद्ध रूप में भी बड़ी सरसता के साथ प्रस्तुत किया है –

"नेमिचंन्द्र आचार्य पुनी, मूल ग्रन्थ करता।
सो मंगल करता ह्वै, हरहु अज्ञ अंधिकार।।
करणाटक वृत्ति अनुसार, केशव वर्णी भव्य विचार।
संस्कृत टीक रची सुखदाय, टोडरमल लेय तसु छाय।।
भाषा टीक करी मैं दोय, वृत्ति में से अर्थ अर्थहिं जोय।
गाथा मूल अर्थ के सार, बांधे छंद स्वमति अनुसार।।
जैसो अर्थ जु टीका मांह, अरु जिस भांति समझ मो आंह।
सो सब कहो न यंत्र तनेय, अरु संदृष्टिक छंद रचेय।।
जो हुए छंद अर्थ मंह भूल, शोधहु सुधी देख श्रुतमूल।
गाथारथ अवधारण काज, सुगम रीति कीनी हित साज।।"

सी–247/4, अर्जुन नगर, सफ्दरगंज एन्क्लेव, नई दिल्ली–110009

✦✦✦

बाबा दौलतराम वर्णी 'नैनागिरि' की रचनायें

– श्री सुरेश जैन (रिटा. आई.ए.एस.)

बाबा दौलतराम वर्णी ने प्राकृत भाषा में विरचित **गोम्मटसार–जीवकाण्ड** की हिन्दी पद्य में सरल–सुबोध–रोचक शैली में **छन्दोदय (जीवकाण्ड–वृत्ति)** की रचना की है। यह रचना 6 सितम्बर, शनिवार 1902 ई., को पूर्ण हुई। इसके पृष्ठ सं. 157 के सवैया इकतीसा छंद क्रमांक 37 के प्रथम पद में 'बरणी दौल बाल" अंकित है। **छन्दोदय** का बाबा जी की अन्य रचनाओं के साथ अध्ययन करने से स्पष्ट है कि यह बाबा जी की रचना है। मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित नैनागिरि में विराजमान भगवान पार्श्वनाथ के समक्ष बैठकर बाबा जी ने विभिन्न टीकाओं के आधार पर **जीवकाण्ड** का हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद किया है। निश्चित ही वे प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के बड़े विद्वान रहे हैं।

बचपन में हमारे पिता स्व. सिंघई सतीशचन्द्र जैन, नैनागिरि बाबा जी द्वारा लिखित **छन्दोदय** की हस्तलिखित प्रति को नियमित रूप से पढ़ा करते थे। उनके स्वाध्याय–चौके पर यह प्रति सदैव रखी रहती थी। वे अपने प्रवचनों में **छन्दोदय** के पद्यों का उल्लेख करते थे। उन्होंने अपने जीवन काल में यह पुस्तक पढ़ने के लिए मुझे प्रेरित किया किन्तु उस समय इसे पढ़ने की रुचि हमारे मन में जागृत नहीं हो सकी। इसके संरक्षण और मुद्रण का विचार तो मन में भी नहीं आया। जब चार–पांच वर्ष पूर्व हमारी माता श्रीमती केशरदेवी हमारी पत्नी न्यायमूर्ति विमला जी के शासकीय बंगले में हमारे साथ जबलपुर में रहीं तब उनकी सतत चर्चा और प्रेरणा से हमें अपने गुरूणां–गुरु की जीवन गाथा पढ़ने की इच्छा हुई। यह जीवन गाथा पढ़ते ही मुझे पिता जी की सीख का स्मरण कर अत्यधिक दुख हुआ। पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी द्वारा लिखित और वर्ष 1949 में प्रकाशित **जीवन गाथा** को पढ़ने से हमें बाबा दौलतराम वर्णी "नैनागिरि" की विभिन्न रचनाओं की सांकेतिक जानकारी प्राप्त हुई। इन रचनाओं में से केवल रेशंदीगिरि–नैनागिरि जैन तीर्थ पर वर्ष 1904 में बाबा जी द्वारा लिखित केवल पूजन की पुस्तिका ही हमें उपलब्ध थी। अतः हमने बाबा जी द्वारा विरचित साहित्य की खोज करने का दृढ़ निश्चय किया।

गोम्मटसार का हिन्दी पद्यानुवाद बाबा दौलतराम जी ने आश्विन शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत 1959 (तदनुसार 6 सितम्बर, 1902, दिन

शनिवार) को नैनागिरि तीर्थ पर रहकर पूर्ण किया। श्री राजमल जैन द्वारा मूल कापी की यह प्रतिलिपि श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार विक्रम संवत 1990 (सन् 1933 श्री महावीर निर्वाण संवत् 2459) को श्री सम्मेदशिखर दिगम्बर जैन तेरहपंथी कोठी मधुवन पोस्ट पारसनाथ जिला हजारीबाग में पूर्ण की गई। श्री पन्नालाल सोनी, व्यवस्थापक ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, झालरापाटन सिटी ने चैत्र शुक्ला चतुर्दशी सं. 1992 (सन् 1935) के दिन यह प्रति 25 रुपये में क्रय की। इस प्रति में 158 पन्नें हैं, लिपि अत्यधिक सुन्दर, मनोज्ञ और आकर्षक है। हमें इस प्रति की छाया–प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, व्यावर, राजस्थान से प्राप्त हुई।

प्राचीन देवनागरी लिपि में हिन्दी पद्य के विभिन्न छंदों में निबद्ध **छन्दोदय** की हस्तलिखित प्रति की साईज 9" बाई 5" है। यह ग्रन्थ 158 पन्नों, 316 पृष्ठों तथा 733 छंदो में निबद्ध है। यह कृति प्रत्येक पन्नें में दोनों ओर लिखी हुई है। अक्षर सुन्दर और सुवाच्य हैं। प्रत्येक पंक्ति में लगभग 40 से 45 अक्षर निबद्ध हैं। इस ग्रन्थ के अंतिम दो पृष्ठों में ग्रन्थ की प्रशस्ति/पुष्पिका दी गई है। इसके प्रथम और अंतिम पृष्ठ का अवलोकन करने से ही कृति का नाम और विषय–वस्तु का सहज बोध हो जाता है। इस कृति के कर्ता ने मूल गाथा के अर्थ को छंदोबद्ध किया है। अपनी कृति के अंतिम पृष्ठ में अपने गुरुओं के नाम के साथ पृष्ठ 157 पर छंद 37 में स्वकीय नाम **"बरणी दौल बाल"** का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इस कृति की रचना बाबा दौलतराम वर्णी ने की है।

बाबा दौलतराम जी अठारहवी शताब्दी के अंतिम दशक में नैनागिरि आ गए और **गोम्मटसार** के हिन्दी पद्यानुवाद का कार्य प्रारंभ किया। उन्होंने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी (श्रुत पंचमी) विक्रम संवत 1959 (सन् 1902) को नैनागिरि में बुन्देलखण्ड की सर्वप्रथम पाठशाला की स्थापना की और अपने इसी चातुर्मास में ही **गोम्मटसार** के हिन्दी पद्यानुवाद का कार्य आश्विन शुक्ला चतुर्थी विक्रम संवत् 1959 (तदनुसार 6 सितम्बर 1902 शनिवार) को पूर्ण किया।

बाबा जी के द्वारा वर्ष 1902 से 1904 के बीच नैनागिरि में विराजमान रहकर विरचित सोलह रचनाओं में से **छन्दोदय, 6 सितम्बर,** 1902 शनिवार, ग्यारह प्रतिमाओं एवं व्रत नियमों की पोथी 3 जनवरी, 1904 रविवार और अन्य तेरह रचनायें 30 मई, 1904 सोमवार को पूर्ण हुई। बाबा दौलतराम वर्णी की सोलह रचनायें – **छन्दोदय, ग्यारह प्रतिमाएं, व्रत/नियमों की पोथी, देवशास्त्र गुरू पूजन, बीस वहिर्म्यान**

तीर्थंकर पूजा, कृत्याकृत्यम् पूजा (कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्य पूजा), शांतिनाथ पूजन, शिखर सम्मेद पूजा, पावापुर क्षेत्र सम्बन्धी श्री वीरनाथ स्वामी की पूजन, श्री चम्पापुर क्षेत्र सम्बन्धी वासुपूज्य स्वामी की पूजा, रेशंदिगिरि (नैनागिरि) सिद्धक्षेत्र पूजा, निर्वाण क्षेत्र पूजन, त्रैलोक्येश जिन चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, पंचपरमेष्ठी स्तोत्र, तरण–तारण स्तोत्र, द्वादशानुप्रेक्षा – हैं।

बाबा जी द्वारा उपरिलिखित रचनाओं में रेशंदिगिरि (नैनागिरि सिद्धक्षेत्र पूजा) अन्य निर्वाण क्षेत्रों की पूजा के साथ–साथ विरचित की गई है। बाबा जी की प्रेरणा से नैनागिरि में सन् 1902 में 'बाबा दौलतराम वर्णी पाठशाला' स्थापित की गई। श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी ने अपनी जीवन गाथा में विभिन्न स्थलों पर बाबा दौलतराम के सम्बन्ध में अनेक घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनकी अत्यधिक सराहना की है। गणेश प्रसाद जी वर्णी ने यह भी उल्लेख किया है कि बाबा दौलतराम वर्णी कवि थे। गणेश प्रसाद जी वर्णी ने स्व. बाबा दौलतराम की प्रशंसा करते हुये स्पष्ट लिखा है कि 'उन्होंने उस समय लोगों का चित्त विद्यादान की ओर आकर्षित किया था अतः मेरी उनके प्रति श्रद्धा हो गयी'। बाबा जी का जन्म बम्हौरी में नैनागिरि तीर्थ के जीर्णोद्धारक श्यामले ब्या के परिवार में हुआ और उनका समाधिमरण वर्ष 1907–08 में नैनागिरि में हुआ – उनकी स्मृति में पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी की प्रेरणा से नैनागिरि में पर्वत पर समाधि–स्थल बनाया गया है।

हिन्दी पद्य साहित्य में दौलतराम नाम के एक से अधिक कवि हुए हैं। अतः इस आलेख के शीर्षक में बाबा दौलतराम के साथ "नैनागिरि" लेखक ने जोड़ दिया है जिससे उनके नाम और अवदान के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रान्ति न हो।

30, निशात कालोनी, भोपाल– 462003

✦✦✦

चिन्तन विमर्श
वर्णी – साध्वाचार – श्री अमित शाह

शोधादर्श के प्रस्तुत अंक में समसामयिक परिदृश्य को दृष्टि में रखते हुए स्मृतिशेष रमा कान्त, श्री अजित प्रसाद जैन और डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के लेखों का पुनः प्रकाशन किया जा रहा है। श्री रमा कान्त का लेख **शोधादर्श 58** (मार्च 2006) में, श्रद्धेय चाचा जी का लेख **शोधादर्श 30** (नवम्बर 1996) में और श्रद्धेय पिता जी का लेख **शोधादर्श 20** (जुलाई 1993) में प्रकाशित हैं। तीन विषयों पर विमर्श प्रस्तावित है : जैन श्रमण परम्परा में **वर्णी** संज्ञा, जैन समाज का मान और माया से विगलित साधु समुदाय, तथा श्री अमित शाह का वक्तव्य कि वह जैन नहीं हैं।

वर्णी

जहाँ तक हमारी जानकारी है 1920 के दशक से पहले कम से कम विगत एक हजार वर्षों में तथाकथित दिगम्बर नग्न साधुओं का विचरण संभव नहीं था। बचपन में हमने सुना था कि मेरठ में एक बाबा लालमन हुआ करते थे जो गृह–त्यागी सामान्य गृहस्थ श्रावक की तरह मंदिर में रहते थे और अपने आचरण एवं यथावश्यक उपदेशों से समाज में सदाचार का प्रचार करते थे। यह प्रायः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की बात है। उस समय के लगभग और भी स्थानों पर इस प्रकार के गृह–त्यागी गृहस्थ श्रावक रहे होंगे जिनके विषय में जानकारी नहीं है।

20वीं शती के प्रारम्भ में **वर्णी** उपाधिधारी कुछ गृह–त्यागी प्रकट हुए। इनमें दो नाम विशेष प्रख्यात हैं – बाबा भागीरथ दास वर्णी और श्री गणेश प्रसाद वर्णी। ये दोनों ही मूलतः वैष्णव थे परन्तु किसी कारण प्रभावित होकर जैन धर्म के अनुयायी हो गये थे।

बाबा भागीरथ दास वर्णी का जन्म मथुरा जिले के पण्डापुर ग्राम में 1868 ई. में हुआ था। वह स्याद्वाद विद्यालय, वाराणसी, के संस्थापकों में थे और कई वर्ष तक उसके अधिष्ठाता पद पर कार्यरत रहे थे। 26 जनवरी, 1942, को उनका समाधिमरण हुआ।

श्री गणेश प्रसाद वर्णी का जन्म 1874 ई. में ललितपुर जिले के हंसेरा ग्राम में हुआ था और 4 सितम्बर 1961 को वे दिवंगत हुए। इस बात से क्षुब्ध होने पर कि ब्राह्मण पंडित जैनों को संस्कृत नहीं पढ़ाते हैं और उनके ग्रन्थों की उपेक्षा करते हैं, उन्होंने यह निश्चय किया कि जैन पाठशालायें खोली जायें जहाँ जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया जा सके। प्रायः 40 वर्ष की आयु होने पर उन्होंने उत्तर भारत में भ्रमण कर जैन पाठशालाओं और विद्यालयों की स्थापना कराई और वे विद्यालय विगत एक सौ वर्षों में उनके 1961 में दिवंगत होने के बाद भी विद्यमान हैं। श्री गणेश प्रसाद वर्णी ने अपने नाम के साथ 'पंडित', 'महात्मा' या 'बाबा' का प्रयोग नहीं किया विदित होता। गृह–त्यागी होने के बाद वह लंगोटी व दो चादर धारण करते रहे जो क्षुल्लक का वेश है। उनकी वृद्धावस्था में उन्हें मात्र लंगोटी पहने ऐलक रूप में प्रख्यापित करने और अंत समय में दिगम्बर नग्नावस्था में प्रदर्शित करने के प्रयत्न किये गये जो उनकी

मनोभावना के अनुकूल नहीं थे – पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं. जगन्नमोहनलाल और प्रो. खुशाल चंद्र गोरावाला प्रभृति विद्वान जब अंत समय में उनके पास पहुंचे तो उनको यही संदेश दिया गया कि वे सद्गृहस्थ के रूप में अपना कार्य करते रहें। यह इस बात का संकेत था कि गृह–त्याग करके साधुचर्या का आडम्बर उचित नहीं है।

श्री मनोहर लाल वर्णी 'सहजानंद' (1915–1978) का जन्म झांसी जिले के दुमदुमा ग्राम में हुआ था और एक के बाद एक दोनों पत्नियों के वियोग के बाद वह संसार से उदास हो गये व गृह–त्याग कर दिया तथा क्षुल्लक वेश धारण किया। 1952 तक एक अध्यात्म प्रेमी के रूप में वह प्रख्यात हो गये थे और मुजफ्फरनगर के श्री सुमेरचन्द जैन, ऐडवोकेट, ने **वर्णी प्रवचन** नाम की पत्रिका प्रकाशित करनी शुरू कर दी थी।

श्री जिनेन्द्र वर्णी का जन्म पानीपत में 1921 में हुआ था और प्रायः 35 वर्ष की अवस्था में गृह–त्याग कर उन्होंने भी क्षुल्लक वेश धारण कर लिया था तथा **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष** का संकलन किया था जिसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 1970–73 में किया गया था।

श्री दीपचन्द वर्णी का भी उल्लेख मिलता है परन्तु उनके विषय में विशेष जानकारी नहीं है। हाल ही में **बाबा दौलतराम वर्णी** की जानकारी भी हुई है जो इसी अंक में दी जा रही है।

श्री मनोहरलाल वर्णी, श्री जिनेन्द्र वर्णी, श्री दीपचन्द वर्णी और श्री दौलतराम वर्णी जन्मतः दिगम्बर आम्नायी जैन थे।

वर्णी नाम से जैन श्रमण परम्परा में किसी गृह–त्यागी का उल्लेख नहीं है। हमने यह जानकारी करने का प्रयत्न किया कि 'वर्णी' शब्द का क्या अर्थ–बोध है परन्तु इस सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। 1961 में श्री गणेश प्रसाद वर्णी के निधन के उपरान्त किसी अन्य ने 'वर्णी' उपाधि से अपने को सूचित नहीं किया और अब यह उपाधि जैनों के गृह–त्यागी वर्ग में विलुप्त हो चुकी है।

साध्वाचार

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के विवकेशील आचार्यों द्वारा श्रमणाचार में आ रही विकृति के सम्बन्ध में जो समीक्षा दी गई, उसका उल्लेख श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन के लेख मे किया गया है। समय–समय पर इस सम्बन्ध में विभिन्न प्रबुद्धजनों के लेख भी **शोधादर्श** में प्रकाशित होते रहे हैं। हाल ही में विगत 28 अप्रैल 2018 को कोलकाता में एक मुनि श्री प्रतीक सागर के शिथिलाचार का समाचार प्रकाश में आया। इसके सम्बन्ध में अखिल भारतीय जैन पत्र सम्पादक संघ की श्री महावीर जी में दिनांक 23–24 जून को सम्पन्न राष्ट्रीय कार्यशाला में संज्ञान लिया गया। यह उल्लेखनीय है कि अहमदाबाद से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र **जिनेन्दु** में आचार्य श्री पुष्पदंत सागर ने श्री प्रतीक सागर का पक्ष साधन किया है, जो यह संशय सूचित करता है कि क्या वह आचार्य स्वयं भी मुनिचर्या के वैसे ही आदर्श को समर्पित हैं।

30 जून और 17 जुलाई को संयम का स्वर्ण वर्ष मनाने के संदर्भ में जिन आचार्य श्री विद्या सागर के सम्बन्ध में कीर्ति–स्तम्भ स्थापित किये गये हैं वह मुनिचर्या का कौन सा आदर्श प्रस्तुत करते हैं – यह चिन्ता का विषय है। 28 जून को वायरल हो गये समाचार ने एक मुनि नयन सागर के चरित्र को उजागर किया है और उनके भक्तों ने जो समाज विघटन का कार्य किया है वह विशेष चिन्ता का विषय है।

मान व माया से युक्त नग्न वेश का दिगम्बरत्व के सिद्धान्त से कोई सरोकार नहीं है। इस वेश को प्रचारित करने का श्रेय तत्कालीन ब्रिटिश शासन को है जिसने जैन समाज की राज्यभक्ति सुनिश्चित करने के लिए यह तमाशा पैदा किया। 1920 के दशक के प्रारम्भ में एक मुनि वेशी–दिगम्बर साधु को शासन की जानकारी में मैसूर से दिल्ली लाया गया जब कि विधितः नग्नता का सामाजिक प्रदर्शन निषिद्ध था। लाल किले के सामने उन साधु को लाकर खड़ा किया गया और उनको कुछ अंग्रेज सैनिकों (टॉमी) के पहरे में रखा गया। दिल्ली के कुछ प्रभावशाली जैनों ने जिनकी पहुंच वायसराय तक थी, वायसराय से इन साधुं को सादर मुक्त कराने की अभ्यर्थना की और उन्हें लाल मंदिर में ले जाने की अनुमति दी गई। ब्रिटिश शासन की यह स्ट्रटेजी सफल हुई और जैन समुदाय की ब्रिटिश शासन के प्रति समर्पित भक्ति सुनिश्चित हुई। हमें विस्मय इस बात से हुआ कि उस समय के समाज सुधारक वर्ग के प्रख्यात जैनों ने, जिन्होंने सुधारवादी भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की 1923 में स्थापना भी की थी, इस सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इनमें उल्लेखनीय नाम हैं बैरिस्टर चम्पत राय जैन, बैरि. जे.एल. जैनी, ब्र. शीतल प्रसाद और श्री अजित प्रसाद ऐडवोकेट (लखनऊ)। इनके अतिरिक्त भी और महानुभाव रहे होंगे। इस घटना के सम्बन्ध में हमने परम मुनि–भक्त विद्वानों से जानकारी करनी चाही, परन्तु उन्होंने इस विषय में मौन रखना ही धर्मनिष्ठा का भाव जाना।

हमें यह देखने पर विस्मय होता है कि आज शिक्षित और विचारशील एवं प्रबुद्ध माने जाने वाले जैन महानुभाव मान एवं माया युक्त साधुचर्या पर आक्रोश क्यों व्यक्त नहीं करते हैं। एक मुनि महाराज को शासन की ओर से बॉडी गार्ड प्राप्त है। एक महाराज रजत शर्मा के टी.वी. चैनल पर 'आपकी अदालत' में भी उपस्थित होते हैं। एक महाराज का 'संयम स्वर्ण वर्ष' मनाया जा रहा है और इस उपलक्ष में कीर्ति–स्तम्भ स्थापित किये जा रहे हैं तथा उनके मुख के चतुर्दिक आभा मण्डल प्रदर्शित किया जाता है और उनके शीर्ष पर त्रि–छत्र अर्पण किया जाता है, तथा उनको 'भगवान' कहकर सम्बोधित भी किया जाता है। संयोग से अभी संयम का हीरक वर्ष मनाने के योग्य एक या सम्भव है एक से अधिक आचार्य जीवित हों। जिनका संयम स्वर्ण वर्ष मनाया गया है उनसे ज्येष्ठ आचार्य विद्यानन्द की जानकारी हमें है। अन्ध श्रद्धा के रूप में जो लोग इस प्रकार के मानयुक्त मायाचार का भक्तिपूर्वक समर्थन करते हैं उनको समुचित रूप से सम्बोधा जाना अपेक्षित है। जिस प्रकार वर्तमान में हमारे

देश मे अन्ध–श्रद्धा युक्त धर्मोन्माद का प्रचार हो रहा है उससे धर्म तत्त्व और नैतिकता के पतन का ही प्रतिफलन होगा और जैन समाज इससे अछूती नहीं रह पायेगीं। **शोधादर्श** में इस प्रकार की विकृतियों के सम्बन्ध में लेख–संवाद आदि प्रकाशित किये जाते रहे हैं। श्री रवीन्द्र मालव और डॉ. अनिल कुमार जैन के लेखों का प्रकाशन **शोधादर्श** में तो हुआ परन्तु अन्य जैन पत्र–पत्रिकाओं में वे देखने को नहीं मिले।

श्री अमित शाह

श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख "समाज चेते, देश जागे" आज के राष्ट्रीय परिदृश्य में विशेष रूप से प्रासंगिक है। 'भारतीय जनता पार्टी' द्वारा जिस वैदिक ब्राह्मणीय हिन्दू धर्म के आश्रय से भगवाकरण की मुहिम चलाई जा रही है वह राष्ट्र के हित में नहीं है और भारतीय संघ को विखंडित कर सकती है। जो कुछ आज हो रहा है जैसे कि तेजस नाम की नई रेल गाड़ी को भगवा पेंट किया गया है और 2019 में लोक सभा के निर्वाचन से पहले प्रयाग में निर्धारित समय से 6 वर्ष पूर्व ही कुम्भ का आयोजन किया जा रहा है तथा और भी कुछ ऐसे कार्य किये जा रहे हैं जिनका यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक नहीं है, एक प्रकार की त्रासदायक स्थिति का अहसास कराता है। 'भारतीय जनता पार्टी' के अध्यक्ष श्री अमित शाह के एक वक्तव्य ने जैन समुदाय के लिए आत्म–सम्मान का प्रश्न भी उपस्थित कर दिया है।

श्री अमित शाह ने एक संवाददाता द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या वह जैन हैं, कहा था कि "नहीं, मैं 6 पुश्त से हिन्दू हूं"। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि 6 पुश्त से पहले वह क्या थे। उपरोक्त कथन से यह ध्वनित होता है कि 6 पुश्त से पहले वह हिन्दू नहीं थे, तो क्या वह मुसलमान, इसाई या पारसी थे, और यदि जैन थे तो अब शाह जी को अपने को जैन कहने में क्यों संकोच है। क्या जैन अभारतीय हैं अथवा भारत–विद्वेशी हैं!

हमारी जानकारी के अनुसार गुजरात में शाह नामधारी जाति वाले श्वेताम्बर आम्नाय के जैन धर्मानुयायी हैं। यह भी जानकारी मिली कि श्री अमित शाह के सभी निकट सम्बन्धी मूर्तिपूजक श्वेताम्बर आम्नाय के जैन धर्मानुयायी हैं। यह भी विदित हुआ कि उन्हें अपने बाबा के आगे किसी पूर्वज का नाम भी संभवतः ज्ञात नहीं है।

श्री अमित शाह का उपरोक्त कथन उनकी सियासी जुमलेबाजी का नमूना हो सकता है परन्तु यह जैन समुदाय के आत्म–सम्मान को अवश्य ही ठेस पहुंचाता है। इसका प्रतिकार पूरे जैन समुदाय को एक जुट होकर करना चाहिए। जो जैन केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में, संसद में, विभिन्न प्रादेशिक विधान सभाओं एवं नगरीय स्थानीय निकाय आदि में 'भारतीय जनता पार्टी' के सदस्य के रूप में स्थान पाये हुए हैं, यदि उनमें किंचित् भी आत्म–सम्मान बचा है तो उन्हें विचार करना चाहिए कि क्या वे अपने पद पर बने रहें ताकि श्री शाह को अपनी भूल का अहसास हो।

– डॉ. शशि कान्त

प्राकृत मुक्तक काव्य *वज्जालग्गं* – एक अध्ययन

– डॉ. (सौ.) अलका अग्रवाल

मुक्तक काव्य

पूर्वापरतः निरपेक्ष, अर्थात् पूर्णतः स्वतंत्र पद्य, मुक्तक कहलाता है। अभिनवगुप्त ने मुक्तक काव्य की परिभाषा की है –

पूर्वापरतः निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा तदेव मुक्तकम्

अर्थात्, मुक्तक काव्य वह काव्य है जिसके पद्य पूर्व एवं पर की अपेक्षा न रखते हुए पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हों। इसमें एक ही पद्य में रस की समस्त विशेषताएं और चमत्कृति के समस्त उपकरण अपेक्षित होते हैं।

प्राकृत भाषा में मुक्तकों का आरम्भ धर्म और सिद्धान्त के आधार पर हुआ। लोक भाषा के रूप में जब प्राकृत भाषा समृद्ध हो गई, तब प्राकृत में रसमय रचनायें होने लगीं। इस प्रकार प्राकृत के मुक्तकों में जहां एक ओर धर्म–तत्त्व है, वहीं दूसरी ओर श्रृंगार–तत्त्व भी है। इसी आधार पर डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री ने प्राकृत के मुक्तकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है– प्राकृत के रसेतर मुक्तक और प्राकृत के रसपूर्ण मुक्तक।

मुक्तक काव्य की दृष्टि से प्राकृत भाषा को मुक्तक काव्य का जनक कहा जा सकता है। प्राकृत भाषा में मुक्तक काव्यों की परम्परा धर्म और सिद्धान्त के आधार पर आरम्भ हुई और ऐहिकता का समावेश हो जाने पर श्रृंगार का विभिन्न रूपों में विकास हुआ। **'गाहासत्तसई'** प्राकृत मुक्तक काव्य की सर्वप्रथम श्रृंगारिक रचना मानी जाती है। इसके संकलनकर्त्ता आन्ध्रभृत्य सातवाहन हाल माने जाते हैं। इनका समय प्रथम शती ईस्वी अनुमन्य है। **गाहासत्तसई** से ही प्रेरित होकर **वज्जालग्गं** मुक्तक काव्य की रचना की गई है।

प्राकृत के रसेतर मुक्तकों में (श्रृंगार रस से भिन्न) धार्मिक एवं नैतिक सूक्तियां तथा धार्मिक स्तोत्र आते हैं। छोटी–छोटी सूक्तियों में निबद्ध धार्मिक अथवा आचार–मूलक एवं नैतिक मुक्तकों के माध्यम से कवि जटिल एवं गम्भीर आध्यात्मिक एवं नीति सम्बन्धी तथ्यों को सरल एवं सुबोध बनाने में सक्षम हो जाते हैं। धार्मिक स्तोत्रों में आराध्य के गुणों की प्रशंसा के साथ दार्शनिक विचारों की महत्ता भी प्रदर्शित की गई है। प्रमुख धार्मिक स्तोत्रों में कुन्द–कुन्द की **'दसमत्ति'**, भद्रबाहु का **'उवसग्गहर स्तोत्र'**, मानतुंग सूरि का **'भयहर स्तोत्र'**, धनपाल का **'ऋषभपंचाशिका'**, देवेन्द्र सूरि का **'शाश्वत्चैत्यास्तव'**, धर्मघोष सूरि का **'भवस्तोत्राणि'**, और **'निर्वाणकाण्ड'**, आदि प्रमुख हैं।

उपलब्ध रसपूर्ण मुक्तकों में सर्वप्राचीन सातवाहन हाल द्वारा संकलित **गाहासत्तसई** है, इसका काल प्रथम शती ई. का पूर्वार्द्ध माना जाता है। द्वितीय मुक्तकों के संग्रह के रूप में **वज्जालग्गं** उपलब्ध है। **विषमबाणलीला** का भी मुक्तक काव्य संग्रह के रूप में उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त भी मुक्तक काव्यों की रचना हुई है परन्तु उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

_वज्जालग्गं_ के कर्ता और उनका समय

वज्जालग्गं ग्रन्थ के अन्तर्गत कहीं पर भी कवि ने स्पष्ट रूप से अपना परिचय अथवा नामोल्लेख नहीं किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में कवि ने विघ्नों के विनाश के लिए सर्वज्ञवदन पंकज–निवासिनी श्रुत–देवी को प्रणाम किया है, इससे सूचित होता है कि ग्रन्थकार जैन धर्म का मतावलम्बी था। ग्रन्थ में तृतीय गाथा के अन्तर्गत मुद्रालंकार के माध्यम से कवि ने अपने नाम की सूचना दी प्रतीत होती है। गाथा इस प्रकार है –

> विविह कइ विरइयाणं गाहाणं वरकुलाणि घेत्तूण।
> रइये वज्जालग्गं विहिणा जयवल्लहं नाम।।

वज्जालग्गं के टीकाकार रत्नदेव ने अपनी **'विद्यालयस्य छाया'** में **वज्जालग्गं** के कर्ता का निम्नवत उल्लेख किया है –

> श्वेताम्बर शिरोमणिर्जयवल्लभो नाम कविः संस्कृते निष्प्रतिमं तथा च श्रृंगारिणं जनमवलोक्य आत्मना, संस्कृत पारंगतोऽपि प्राकृत गाथा संग्राहिमम् चकार।

गाथा 1 व 3 में उपलब्ध अन्तर्साक्ष्य रत्नदेव के उपर्युक्त कथन की पुष्टि करते हैं।

वज्जालग्गं की दो टीकाओं का उल्लेख मिलता है – एक रत्नदेव कृत **'विद्यालयस्य छाया'** है, इसका रचना काल 1337 ई. है। दूसरी टीका धनसार ने लिखी है, इसका रचना समय 1496 ई. है।

वज्जालग्गं के अन्तर्गत प्रथम शती ई. से लेकर 1304 ई. तक के विभिन्न प्राकृत ग्रन्थों में से चयनित गाथायें संग्रहीत हैं। **वज्जालग्गं** की प्रथम टीका 1337 ई. में लिखी गई। अतः **वज्जालग्गं** का रचनाकाल 1304 ई. से 1337 ई. के मध्य माना जा सकता है।

ग्रन्थ परिचय

वज्जालग्गं वज्जाबद्ध शैली में लिखा गया है। इसमें कुल 95 वज्जायें तथा 795 गाथायें संग्रहीत हैं। इसमें धर्म, अर्थ और काम – त्रिवर्ग

से सम्बन्धित सुभाषितों का संकलन है। धर्म, अर्थ और काम अन्योन्याश्रित हैं, अतः गाथाओं में धर्म, अर्थ और काम समन्वित रूप से निरूपित है।

वज्जालग्गं में कवि ने जीवन के विविध क्षेत्रों को चित्रित किया है। इसमें जनसाधारण के सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न कवियों द्वारा रचित उत्कृष्ट कोटि की गाथाओं का संग्रह किया गया है। इसकी गाथायें सज्जनता, मैत्री, करुणा, परोपकार, दान, नीति, सदाचार, उदारता, उत्साह, पराक्रम, कर्मठता, पुरुषार्थ, कर्त्तव्यपरायणता, सन्तोष, क्षमा, शरणागत की रक्षा, गुण, शील, मृदुता, आत्म–सम्मान, प्रेम इत्यादि श्रेष्ठ मानवीय गुणों की सत्प्रेरणा देती हैं। आदर्श गृहिणी तथा सती स्त्रियों के चित्रण के माध्यम से भारतीय नारी के गुणों की प्रशंसा की गई है। दरिद्रता का मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी चित्रण है। कुटिल के निकृष्ट स्वभाव तथा सज्जन के उदात्त गुणों का चित्रण है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

वज्जालग्गं में नैतिक मूल्यों तथा जीवन मूल्यों के साथ श्रृंगार का भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसमें श्रृंगार के संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों पक्षों का चित्रण विद्यमान है।

वज्जालग्गं में गाथायें विभिन्न मुक्तक काव्यों तथा प्रबन्ध ग्रन्थों से चयन करके संग्रहीत की गई हैं। **गाहासत्तसई** (प्रथम शती ई.) की लगभग 61 गाथायें **वज्जालग्गं** में संग्रहीत हैं। **गाहासत्तसई** भी एक संग्रह काव्य ग्रन्थ है और इसमें विभिन्न कवियों द्वारा रचित गाथाओं का संग्रह है। अतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि **वज्जालग्गं** में गाथायें **गाहासत्तसई** से ली गई हैं। यह भी संभव है कि जयवल्लभ ने इन गाथाओं को उनके मौलिक स्रोत से प्राप्त किया हो। विभिन्न अलंकार ग्रन्थों में **वज्जालग्गं** की गाथायें उदधृत हैं। प्रायः सभी अलंकार ग्रन्थ **वज्जालग्गं** की रचना काल के पूर्व के है। अतः संभव है कि जयवल्लभ ने विभिन्न अलंकार ग्रन्थों से गाथाओं को संग्रहीत किया हो। **गाहासत्तसई** तथा विभिन्न अलंकार शास्त्रों के अतिरिक्त अनेक प्रबन्ध ग्रन्थों में भी **वज्जालग्गं** की गाथायें प्राप्त हुई हैं जो निश्चय ही उन प्रबन्ध–ग्रन्थों से **वज्जालग्गं** में संकलित की गई हैं। ये ग्रन्थ हैं– वाक्पतिराज कृत **गउडवहो**, उद्योतनसूरि कृत **कुवलयमाला**, कोऊहल कृत **लीलावइ**, शीलकाचार्य कृत **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं**, मलधारी हेमचन्द्र कृत **भवभावना** और मेरूतुंगाचार्य कृत **प्रबन्धचिन्तामणि**।

वज्जालग्गं में किसी एक काल की रचनाओं में से गाथाओं को संग्रहीत नहीं किया गया है वरन् भिन्न–भिन्न काल के ग्रन्थों में से श्रेष्ठ गाथाओं को संकलित किया गया है। अतः हम सम्पूर्ण ग्रन्थ को किसी एक प्राकृत भाषा का ग्रन्थ नहीं कह सकते हैं। प्रथम शती ई. से लेकर तेरहवीं–चौदहवीं शती ई. के मध्य प्राकृत भाषा के विकास में बहुत से परिवर्तन हुए हैं, जिनका प्रभाव तात्कालिक रचनाओं पर अवश्य पड़ा है। छठी शती ई. से अपभ्रंश भाषा में रचनायें होने लगी थीं, और तेरहवी–चौदहवीं शती ई. तक अपभ्रंश भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी। अतः इस काल में रची जाने वाली प्राकृत रचनाओं पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्टतः देखने को मिलता है। **वज्जालग्गं** की गाथाओं में जैन महाराष्ट्री प्राकृत की विशिष्टताएं विद्यमान हैं तथा प्राकृत पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है। साथ ही, देशी शब्दों का बाहुल्य **वज्जालग्गं** की गाथाओं में मिलता है।

वज्जालग्गं में गाहा छन्द का प्रयोग किया गया है। यह श्रृंगार रस प्रधान ग्रन्थ है, परन्तु श्रृंगार रस के साथ इसकी गाथाओं में करुण, वीर, अद्भुत, शान्त, वीभत्स, रौद्र तथा हास्य रस का भी प्रवाह हुआ है। अलंकारों के रसानुगुण विनिवेश के कारण **वज्जालग्गं** में भावों का तारल्य और भी बढ़ गया है। **वज्जालग्गं** की गाथाओं में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, तुल्ययोगिता, दीपक, कारकदीपक, अपह्नुति, काव्यलिङ्ग, निदर्शना, व्यतिरेक, विरोध और विकल्प अलंकारों का प्रयोग बहुधा देखने को मिलता है।

गाथाओं में श्लेष कृत चमत्कार का आधिक्य है। श्लेष का प्रयोग स्वतंत्र रूप से कम देखने को मिलता है परन्तु अन्य अलंकारों के सहायक के रूप में इसका बहुधा प्रयोग हुआ है। श्लेष का दो रूपों में प्रयोग किया गया है – एक तो वाच्यार्थ द्वारा ही दो अर्थों की प्रतीति कराता है। दूसरे प्रकार में श्लेष अभिधा शक्ति द्वारा केवल वाच्यार्थ की प्रतीति कराता है तथा व्यंजना शक्ति द्वारा वाच्यार्थ से बिल्कुल भिन्न एक नवीन अर्थ (जिसका प्रसंग से कोई सम्बन्ध नहीं होता) की प्रतीति कराता है। इस प्रकार की गाथाओं में कवि ने प्रतीकों की योजना द्वारा अर्थ स्पष्ट किया है।

वज्जालग्गं काव्य की माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त वैदर्भी रीति है। इसमें व्यंग्यार्थ की प्रधानता है। इसी विशेषता के कारण इसकी अनेक गाथायें **ध्वनि काव्य** के सर्वोत्तम उदाहरणों के रूप में रखी जा सकती हैं।

वज्जालग्गं में संस्कृत के सुभाषित ग्रन्थों की रचना शैली का अनुकरण किया गया प्रतीत होता है क्योंकि जयवल्लभ से पूर्व संस्कृत

साहित्य में तो विषयवार सुभाषितों की रचना मिलती है परन्तु प्राकृत मुक्तक काव्यों में विषयवार या पद्धतिवार गाथाओं का संकलन **वज्जालग्गं** में ही दृष्टिगत होता है। **वज्जालग्गं** में अपने समय की उत्कृष्ट तथा लोकप्रिय (श्रेष्ठ) गाथाओं का संकलन किया गया है। इसी कारण जयवल्लभ से पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्यकारों पर भी इनका पूर्वाभास दृष्टिगत होता है। भर्तृहरि, अमितगति, कालिदास, अमरूक, गोवर्धनाचार्य, भवभूति प्रभृति साहित्यकारों की रचनाओं में **वज्जालग्गं** की गाथाओं से भाव–साम्य के पद्य दृष्टिगत होते हैं। परवर्ती संस्कृत तथा हिन्दी के साहित्यकारों पर भी **वज्जालग्गं** की गाथाओं से भाव–साम्य दृष्टिगत होता है। हिन्दी के कवियों में कबीर, रहीम, बिहारी, तुलसी प्रमुख हैं। भावों के अद्‌भुत साम्य से यह सूचित होता है कि ये सुभाषित तथा लोकोक्तियां किसी विशिष्ट काल की परिधि में बंधी हुई नहीं हैं, वरन् इनमें जीवन के शाश्वत सत्य को दर्शाया गया है। ये धारणाएं तथा मान्यताएं लगभग दो हजार वर्ष पूर्व से लेकर आज तक जन–मानस में उसी प्रकार परम्परागत रूप से प्रवाहित हो रही हैं।

वज्जालग्गं की गाथाओं में वर्णित सामाजिक दशा, आर्थिक महत्व, रीति रिवाज, सौन्दर्य प्रसाधन, जीवन मूल्य तथा लोक विश्वास और धारणाएं तात्कालिक लोक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती हैं। **वज्जालग्गं** में अनेक लोकोक्तियों तथा सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। आज के लोक जीवन में भी उनमें से कतिपय लोकोक्तियों व सूक्तियों का व्यवहार दृष्टिगत होता है। मूलरूप से उनमें कोई अन्तर नहीं आया है, समय तथा परिवेश के अनुसार उनका स्वरूप तथा भाषा अवश्य बदलती रही है।

सारांश में, **वज्जालग्गं** प्राकृत साहित्य की अनुपम कृति है क्योंकि इसमें ग्रन्थकार के समय तक उपलब्ध समस्त प्राकृत गाथाओं में से धर्म–अर्थ–काम त्रिवर्ग के अन्तर्गत लौकिक दृष्टि से उपादेय गाथाओं को विधि पूर्वक वज्जाबद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह उच्च कोटि की कृति है।

(लेखिका द्वारा इस विषय पर प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा 1992 में पी–एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। इस विषय पर उनके तीन लेख–"प्राकृत मुक्तक काव्य वज्जालग्गं" शोधादर्श–8 नवम्बर 1988 में, "प्राकृत रसेतर मुक्तक काव्य" शोधादर्श–9 मई 1989 में, और "प्राकृत मुक्तक काव्य वज्जालग्गं – एक अध्ययन" शोधादर्श–19 मार्च 1993 में प्रकाशित हुए।)

'अनुभूति',7,राधा इन्क्लेव, इलाइट क्रासिंग, झांसी रोड, ललितपुर–284403

✦✦✦

'वज्जालग्गं' में प्रतिपादित जीवन मूल्य

– प्रो. डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

वज्जालग्गं (व्रज्यालग्नं) प्राकृत साहित्य का एक सुन्दर और समृद्ध **मुक्तक काव्य** है। प्राकृत सुभाषित ग्रन्थों में इसका अप्रतिम स्थान है। यह प्राकृत गाथाओं का सर्वप्रथम **कोष** है जिसमें गाथाओं का संग्रह विषयानुसार किया गया है। इस ग्रन्थ में धर्म, अर्थ तथा काम के विभिन्न पहलुओं पर गाथायें प्रस्तुत की गयी हैं। यह प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार जीवन को एकांगी के स्थान पर सर्वांगीण मानता है, इसलिए धर्म के साथ अर्थ और काम का भी इसमें विवेचन किया गया है। मानवीय जीवन में विविधता है और उसे एकपक्षीय नहीं बनाया जा सकता। इसमें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध गाथायें संकलित हैं। कवि ने जीवन को परिष्कृत करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से गाथाओं का चयन किया है।

श्री जयवल्लभ मुनि ने इस ग्रन्थ का संकलन किया है। इसकी उपलब्ध प्रतियों में 795 गाथायें पायी जाती हैं। इन सुभाषितों के द्वारा उनके रचयिताओं की सूझबूझ और सूक्ष्म पर्यवेक्षण–शक्ति का अनुमान किया जा सकता है।

वज्जालग्गं का अर्थ

'वज्जा' शब्द संस्कृत 'व्रज्या' का प्राकृत रूप है। संस्कृत में उसका अर्थ भले ही गमन या मार्ग हो पर वह वर्ग (समूह) के अर्थ में भी प्रचलित था। आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार 'वज्जा' का अर्थ है – अधिकार या प्रकरण।

ग्रन्थकार के शब्दों में **'वज्जालग्गं'** विभिन्न पद्यों के समूहों का ऐसा संग्रह है जिसके प्रत्येक समूह का एक–एक विषय (शीर्षक) होता है, वज्जा का अर्थ 'पद्धति' है।

'लग्ग' शब्द का मूल यद्यपि संस्कृत में 'लग्न' है तथापि प्राकृत में वह भी एक नये अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था। आचार्य हेमचन्द्र ने उसका अर्थ 'चिह्न' लिखा है।

प्रो. पटवर्धन एवं पिशेल ने भी इस ग्रन्थ के नाम पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गाथायें प्रकरण के अनुसार रखी गयी हैं। यदि हम **'लग्ग'** को देशी शब्द मान कर 'चिह्न' के अर्थ में न ग्रहण करें, उसे

संस्कृत 'लग्न' के अर्थ में ही रहने दें तो 'वज्जालग्गं' से उस काव्य का अर्थ–बोध होगा जो वज्जाओं (प्रकरणों) से संलग्न हो – 'व्रज्याभिः **लग्नं** निबद्धं काव्यं **व्रज्यालग्नं** – अर्थात्, प्रकरणबद्ध रचना।

कुछ विद्वानों के मतानुसार इस ग्रन्थ का दूसरा नाम **जय वल्लभ** है।

इस बहुचर्चित मत का निराकरण इसी ग्रन्थ की तृतीय गाथा – 'रइयं वज्जालग्गं'– के अर्थ निरूपण से स्वतः हो जाता है।

संग्रहकार और उनका समय

'वज्जालग्गं के संग्रहकार श्री जयवल्लभ मुनि हैं। **'वज्जालग्गं'** ग्रन्थ का आरम्भ सर्वज्ञ के मुख–कमल में निवास करने वाली श्रुत–देवी को प्रणाम निवेदित करने से हुआ है। इससे संग्रहकार का जैन होना निश्चित है। वे प्रकाण्ड पण्डित और श्वेताम्बर जैन मुनि थे। मनीषियों ने ग्रन्थ के अन्तः साक्ष्यों के आधार पर इसकी रचना 750 से 1337 के बीच कभी हुई, ऐसा स्वीकार किया है।

संग्रह का प्रयोजन

वज्जालग्गं के मंगलाचरण की गाथा की दूसरी पंक्ति है – **'धम्माइ तिवग्गजुयं सुयणाण सुहासियं वोच्छं।'** इस कथन से ग्रन्थकार का लक्ष्य – धर्म, अर्थ और काम – त्रिवर्ग की शिक्षा देना सुस्पष्ट है। किन्तु समीक्षकों ने इस रचना के कुछ और भी उद्देश्य अनुभव किये हैं।

इस ग्रन्थ की तीसरी 'कव्व वज्जा' में प्राकृत काव्यों, प्राकृत कवियों और प्राकृत काव्यों के विदग्ध पाठकों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया गया है। देशी शब्दों से रचित, मधुर शब्दों और अक्षरों में निबद्ध स्फुट गम्भीर गूढ़ार्थ प्राकृत काव्यों को पढ़ने का उपदेश दिया गया है। प्राकृत की वकालत करते हुए कवि कहता है कि 'ललित, मधुर अक्षर–युक्त युवती–जन वल्लभ,श्रृंगारपूर्ण प्राकृत काव्यों के रहते हुए कौन संस्कृत पढ़ सकता है?'

इससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि ग्रन्थकार **'वज्जालग्गं'** के माध्यम से प्राकृत भाषा और साहित्य का प्रचार और प्रसार चाहते थे। वस्तुतः इसी उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने यहां–वहां बिखरी हुई प्राकृत की बहुमूल्य गाथाओं को संग्रह कर यह मनोरम ग्रन्थ बनाया है, जिसकी सरसता से आकर्षित होकर संस्कृत काव्य–प्रेमी भी संस्कृत छोड़ प्राकृत काव्य का ही रसास्वादन करें।

वज्जालग्गं की सरसता को देखते हुए हम स्पष्ट कह सकते हैं कि ग्रन्थकार अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से सफल हुआ है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण भी इस ग्रन्थ के संग्रह का ध्वनित होता है। उस युग में धीरे–धीरे अपभ्रंश और प्राकृत को छोड़कर आम आदमी 'लोक भाषा काव्य' की ओर आकर्षित हो रहे थे। उस स्थिति में प्राकृत की श्रेष्ठ और अप्रतिम रचनाओं के संरक्षण का भी प्रश्न था। संग्रहकार की सूक्ष्म दृष्टि इस भावी संकट पर पड़ी और उन्होंने प्राकृत की उत्कृष्ट रचनाओं को इकठ्ठा कर उन्हें नष्ट होने से बचा लिया। साथ ही, प्रबुद्ध पाठकों को एक ही ग्रन्थ में विविध विषयों पर अनेक कवियों की इन्द्रधनुषी कल्पनाओं से अभिमण्डित काव्य–रचनाओं के रसास्वादन का सुअवसर भी सुलभ कराया।

वर्गीकरण

वज्जालग्गं प्रकरणों में विभक्त है जिनमें प्राकृत के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय छन्द गाहा (गाथा) का प्रयोग किया गया है। इसमें प्रयुक्त निदर्शित भाषा को 'मिश्रित भाषा' कह सकते हैं। यतः ग्रन्थ की सभी गाथायें न तो एक कवि की रचनायें हैं और न उनका रचनाकाल ही एक है। कुछ गाथाओं में जैन महाराष्ट्री की प्रवृत्तियां हैं तो कुछ में अर्धमागधी के भी प्रयोग हैं। सबसे अधिक प्रभाव अपभ्रंश का है।

श्री रत्नदेवगणि ने संवत् 1393 में इस पर संस्कृत टीका लिखी है।

वज्जालग्गं में प्रतिपादित जीवन मूल्य

वज्जालग्गं में जीवन के विविध क्षेत्रों की अनुभूतियां वर्णित हैं। इसकी गाथायें केवल श्रृंगार के घेरे में न रहकर सच्ची मानवता के संरक्षण और संवर्धन का संदेश देती हैं।

भारतीय संस्कृति में इस बात पर बहुत बल दिया गया है कि व्यक्ति प्रामाणिक जीवन जिये। यह विचार जैन दर्शन और साहित्य में भी बहुत महत्वपूर्ण है। जैन दर्शन के महत्वपूर्ण आद्य ग्रन्थ **तत्त्वार्थसूत्र** में सम्यक् दर्शन और सम्यग्ज्ञान, के साथ सम्यक् चारित्र की भी अनिवार्यता निदर्शित है। तीनों को युगपत् आत्मसात करने से ही मुक्ति संभव है। प्रत्येक युग में अनेक दार्शनिक एवं ज्ञानी पुरुष हुए है। परन्तु केवल वे ही मान्य और प्रभावी हुए जिन्होंने अपने ज्ञान और दर्शन को जीवन में उतारा और चरित्र की अमिट छाप छोड़ी।

वर्तमान जीवन भौतिकता प्रधान है। इस युग में धर्म की तुलना में काम और अर्थ प्रधान हैं। ऐसी भौतिक चकाचौंध में भी पूजनीय तो वे ही लोग हैं जो शुद्ध,समर्पित और साधना–प्रधान जीवन जीते हैं तथा सिद्धांतों में अडिग हैं। अर्थ–सम्पन्न लोगों में आस्था के स्थान पर प्रायः ईर्ष्या ही

दिखाई पड़ती है। अकेली विद्वत्ता का प्रभाव क्षणिक ही रहता है। आज के युग में भक्ति तो बढ़ी है, पर नैतिकता घटी है अर्थात् अपने जीवन में नैतिकता का समावेश करके हम जीवन–मूल्यों को समाविष्ट कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति और विशेष रूप से जैन संस्कृति कर्म–प्रधान तथा गुण–मूलक है। धर्म, अर्थ और काम – इन तीनों पुरुषार्थों के यथेष्ट समन्वय–साध्य क्रियान्वयन से मनुष्य अपने कर्मों के परिणामों को अच्छा बना सकता है। इसके लिए जीवन–मूल्यों और सदाचरण को आत्मसात करना आवश्यक है।

वज्जालग्गं में प्रतिपादित जीवन मूल्य हैं – क्षमा, साहस, धैर्य, परोपकार, मृदुवचन, शुद्ध संकल्प, सत्कर्म, स्नेह, मित्रता, आत्म सम्मान की रक्षा, विनय, कृतज्ञता, गम्भीरता, वचन पालन, राष्ट्र रक्षा, कुसंगति का त्याग, सज्जन–समागम,साहस, धैर्य, गुण ग्रहण, वचन पालन, ज्ञान, अभय, उदारता, राष्ट्र सम्मान, गुणीजनों का आदर – प्रभृति वे सब सद्गुण जिनको अपनाने से स्वस्थ, सुशील और सदाचार–प्रवण नागरिकता तथा आदर्श राष्ट्र समुन्नत हो सके।

इस आलेख में सर्वप्रथम जीवन मूल्य के नाम का उल्लेख है, तत्पश्चात् वज्जा का नाम और सन्दर्भित गाथा का क्रमांक निदर्शित है।

वज्जालग्गं का सुस्पष्ट निर्देश है कि व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से महान होता है –

जम्मंतरं न गरूयं गरूयं पुरिसस्स गुणगणारूहणं।
मुत्ताहलं हि गरूयं न हु गरूयं सिप्पिसंपुडयं।।
– गुणवज्जा, गाथा 3; वज्जालग्गं, गाथा 687

(जन्मान्तरं न गुरु गुरु पुरुषस्य गुणगणारोहणम्।
मुक्ताफलं हि गुरु न खलु गुरु शुक्ति – संपुटकम।।)

अर्थात्, मनुष्य को महत्व उत्तम कुल में जन्म लेने से नहीं, बहुत से गुणों को धारण करने से प्राप्त होता है। मोती ही महान होता है (बहुमूल्य होता है), सीपी नहीं।

वज्जालग्गं निम्नलिखित तीन व्यक्तियों को पृथ्वी का अलंकार मानता है –

जं जि खमेइ समत्थो धणवंतो जं न गव्वमुव्वहइ।
जं च सविज्जो नमिरो तिसु तेसु अलंकिया पुहवी।।
– नीइवज्जा, गाथा 7; वज्जालग्गं, गाथा 87

(यत् खलु क्षमते समर्थो धनवान् यन्न गर्वमुदवहति।
यच्च सविद्यो नम्रस् त्रिभिस्तैरलंकृता पृथ्वी।।)

अर्थात्, सामर्थ्यवान वह है जो क्षमा करे, धनवान वह है जो घमंड न करे, और विद्वान वह है जो विनम्र हो।

क्षमा : जीवन में "क्षमा" बहुमूल्य रत्न है। 'सज्जणवज्जा' और "नीई (नीति) वज्जा" प्रभृति वज्जाओं में इस गुण की महनीयता प्रतिपादित है।

दीणं अब्भुद्धरिउं पत्ते सरणागए पियं काउं।
अवरद्धेसु वि खमिउं सुयणो च्चिय नवरि जाणेइ।।

— सज्जणवज्जा, 13/44

(दीनमभ्युद्धर्तु प्राप्ते शरणागते प्रियं कर्तुम।
अपराद्धेष्वपि क्षन्तुं सुजन एव केवल जानाति।।)

अर्थात्, दीनों का उद्धार करना, शरण में आए हुए व्यक्ति का प्रिय (भला) करना, तथा (अपने प्रति किये गये) अपराधों को भी क्षमा करना केवल सज्जन ही जानता है।

सज्जणवज्जा की गाथायें 41 और 42 तथा नीइवज्जा में 85वीं गाथा भी इसी गुण का मूल्य समझाती हैं। इसमें क्षमा को बड़े से बड़े तप से श्रेष्ठ कहा है —

सीलं वरं कुलाओ दालिद्दं भव्वयं रोगाओ।
विज्जा रज्जाउ वरं खमा वरं सुट्ठुवि तवाओ।। 5/85

परोपकार : परोपकार की महिमा 'सज्जणवज्जा', गाथा सं. 36, 38, 41, 44, 45, 48, साहस वज्जा गाथा 116, और 'पुरिसणिंढावज्जा' गाथा 705 आदि में निदर्शित है।

सज्जणवज्जा गाथा 14/45 —

बे पुरिसा धरइ धरा अहवा दोहिं पि धारिया धरणी।
उपयारे जस्स मई उवयरियं जो न पम्हुसई।।
(द्वौ पुरुषौ धरति धराथवा द्वाभ्यामपि धारिता धरणी।
उपकारे यस्य तिरूपकृतं यो न विस्मरति।।)

अर्थात्, पृथ्वी दो प्रकार के पुरुषों को धारण करती है अथवा दो प्रकार के पुरुषों ने पृथ्वी को धारण किया है — जिसकी मति उपकार में लगी है और जो किये हुए उपकार को नहीं भूलता है।

सज्जणवज्जा, गाथा 17/48 —

चंदणतरूव्व सुयणा फलरहिया जइ वि निम्मिया विहिणा।
तह वि कुणंति परत्थं नियपसरीरेण लोयस्स।।

अर्थात्, यद्यपि विधाता ने सज्जनों को चंदन के वृक्ष के समान फल–रहित बनाया है तथापि वे अपने शरीर से लोगों का उपकार करते रहते हैं (या जगत का उपकार करते रहते हैं)। यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि चन्दन में फल नहीं लगते हैं और सज्जन में फल अर्थात्, स्वार्थ नहीं होता है।

विनय : फलसंपत्तीइ समोणयाइ तुंगाइ फलविपत्तीय।
हिययाइ सुपुरिसाणं महातरूणं व सिहराइं।।
— साहसवज्जा, 8/114
(फल–संपतया समवनतानि तुंगानि फलविपत्या।
हृदयानि सुपुरुषाणां महातरुणामिव शिखराणि।।)

अर्थात्, सज्जन पुरुषों के हृदय बड़े वृक्षों के शिखरों की तरह ऐश्वर्य की प्राप्ति होने पर (वृक्ष पक्ष में फल लगने पर) विनम्र (वृक्ष पक्ष में अवनत) और ऐश्वर्यहीन होने पर (वृक्षपक्ष में फल झड़ जाने पर) उन्नत हो जाता है (वृक्ष पक्ष में फल न रहने पर डालियाँ ऊपर चली जाती हैं)।

गम्भीरता : लच्छीइ विणा रयणायरस्स गंभीरिमा तह च्चेव।
सा लच्छी तेण विणा भण कस्स न मंदिरं पत्ता।।
— रयाणायर वज्जा, 5/750
(लक्ष्म्या विना रत्नाकरस्य गम्भीरता तथैव।
स लक्ष्मीस्तेन विना भण कस्य न मंदिरं प्राप्ता।।)

अर्थात्, लक्ष्मी के अभाव में भी समुद्र की अगाधता ज्यों की ज्यों रह गयी, परन्तु समुद्र के बिना वह लक्ष्मी, कहो, किस–किस के घर नहीं गयीं?

वडवाणलेण गहिओ महिओ य सुरासुरेहि सयलेहिं।
लच्छीइ उवहि मुक्को पेच्छह गंभीरिमा तस्स।।
— रयाणायर वज्जा, 6/751
(वडवानलेन गृहीतो मथितश्व सुरासुरैः सकलैः।
लक्ष्म्योदधिर्मुक्तः प्रेक्षध्वं गम्भीरता तस्य।।)

अर्थात्, समुद्र को वडवानल ने सुखाया, सकल सुर–असुरों के द्वारा मथा गया और लक्ष्मी ने भी छोड़ दिया, फिर भी उसकी गम्भीरता को देखा।

कृतज्ञता : श्रयणेहि निरंतरपूरिएहि रयाणायरस्स न हु गव्वो।
करिणो मुत्ताहलसंसए विमय चिब्भला दिट्ठी।।
— रयाणायर वज्जा, 8/753
(रत्नैर्निरन्तर – पूरितै रत्नाकरस्य न खलु गर्वः।
करिणो मुक्ताफलसंशयेऽपि मढविह्वला दृष्टि।।)

अर्थात्, निरन्तर भरे रहने वाले रत्नों से भी रत्नाकर को गर्व नहीं है। किन्तु मोती का सन्देह होने पर ही (सन्देह मात्र से ही) हाथी की दृष्टि मद (द्रव, गर्व) से विह्वल हो जाती है।

प्रिय वचन : दिट्ठा हरति दुक्खं जंपंता देंति सयलसोक्खाइं।
एयं विहिणा सुकयं सुयणा जं निम्मिया भुवणे।।
— सज्जणवज्जा, 5/36

(दृष्ट हरन्ति दुःखं जल्पन्तो ददति सकल–सौख्यानि।
एतद् विधिना सुकृतं सुजनायन्निर्मिता भुवने।।)

अर्थात्, विधाता ने यह अच्छा ही किया जो संसार में सज्जनों की रचना कर दी। वे देखे जाने पर दुःख हर लेते हैं और बोलते समय सभी सुख प्रदान करते हैं।

शुद्ध संकल्प : सिग्घं आरूह कज्जं पारद्धं मा कहंपि सिढिलेसु।
पारद्ध–सिढिलियाइं कज्जाइ पुणो न सिज्झंति।।
— धीरवज्जा, 2/92

(शीघ्रमारोह कार्य प्रारब्धं मा कथमपि शिथिलयं।
प्रारब्ध–शिथिलितानि कार्याणि पुनर्न सिध्यन्ति।।)

अर्थात्, कार्य का आरम्भ शीघ्र करो, प्रारब्ध (अर्थात् प्रारंभ किये हुए) कार्य में किसी प्रकार की शिथिलता मत करो। यतः प्रारम्भ किये हुये कार्यो में शिथिलता आ जाने पर वे पुनः पूर्ण नहीं होते हैं।

इस ग्रन्थ में अपने संकल्प की दृढ़तापूर्वक सम्पूर्ति की महिमा विविध प्रकार से समझाकर सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित किया गया है।

यथा— सेना चलति पलए मज्जायं सायरा वि मेल्लंति।
सुयणा तहिं पि काले पडिवन्नं नेव सिढिलंति।।
— सज्जणवज्जा,16/47

अर्थात्, प्रलय काल में पर्वत भी चलायमान हो जाते हैं, समुद्र भी अपनी सीमाएं छोड़ देते हैं। किन्तु सज्जन पुरुष उस काल में भी अपने वचन को भंग नहीं करते।

अच्छे नागरिक पहले तो वचन देते ही नहीं, यदि देते हैं तो बहुत कठिनाई से और जब वचन दे देते हैं तो—**'पत्थर रेहव्व समा मरणे वि न अन्नहा होइ'** सज्जणवज्जा, 15/46) — पत्थर की रेखा के समान अटल रहते हैं।

चाहे सिर कट जाये, चाहे जेल में चले जायें और चाहे सभी प्रकार की निर्धनता ही क्यों न हो जावे, अपने द्वारा स्वीकार किये गये की रक्षा में

जो होना है वह सब हो जाये, सज्जन व्यक्ति अपनी बात की रक्षा प्राथमिकता से करते हैं –

छज्जउ सीसं अह होउ बंधणं चयउ सव्वहा लच्छी।
पडिवन्नपालणे सुपुरिसाणं ज होइ तं होउ।।
– मित्तवज्जा, 7/71

सज्जनों के स्वभाव का वर्णन : वे न तो दूसरों का उपहास करते हैं और न अपनी प्रशंसा। सैकड़ों प्रिय वचन बोलते रहते हैं (अर्थात्, हमेशा प्रिय वचन ही बोलते हैं)। –

न हंसति परं न थुवंति अप्पयं पियसयाइ जंपंति।
एसो सुयण सहावो नमो नमो ताण पुरिसाणं।।
– सज्जणवज्जा, 6/37

इसी वज्जा की नौंवी गाथा भी इसी जीवन मूल्य की प्रतिपादक है – 'फरूसं न भणसि भणिओ वि हससिस हसिऊण जंपसि पियाइ' अर्थात्, तुम कठोर वचन नहीं बोलते हो, (किसी अन्य के द्वारा कठोर वचन) बोलने पर भी हंस देते हो, हंस कर प्रिय ही कहते हो।

कुसंगति से बचाव की प्रेरणा :

सरसा वि दुमा दावाणलेण डज्झंति सुक्ख–संवलिया।
दुज्जणसंगे पत्ते सुयणो विसुहं न पावेइ।।15/63

अर्थात्, सूखे काष्ठों से मिलकर सरस वृक्ष भी दावानल में दग्ध हो जाते हैं। दुर्जन के संसर्ग से सज्जन भी सुख नहीं पाता।

सत्संगति/सत्समागम की अनुमोदना : इस ग्रन्थ की 'चन्दण–वज्जा' (गाथा 728–732) में सत्समागम की महती अनुमोदना है –

सुसिएण निहसियण वि तह कह विहु चंदणेण महमहियं।
सरसा वि कुसुममाला जह जाया परिमल विलक्खा।।

अर्थात्, सूख जाने और घिस डाले जाने पर भी चन्दन कुछ इस प्रकार महक उठा कि जिससे ताजे फूलों की सरसमाला भी उसकी सुगन्ध से लजा गई।

संसार की नश्वरता : 'अनित्योऽयं संसारः कृतकत्वात्' – दर्शन–शास्त्र का यह सार जरावज्जा (7/665) में निदर्शित है, –

जीयं जलबिंदु समं उप्पलइ जोव्वणं सहजराए।
दियहा दियहेहि समा न हुति किं निटठुरो लोओ।।

अर्थात्, जीवन पानी की बूंद की तरह नश्वर है, जवानी बुढ़ापा के साथ उत्पन्न होती है, सभी दिन एक जैसे नहीं रहते, यह संसार–चक्र कैसा निष्ठुर है?

कर्म फल की अटलता :

विहडंति सुया विहडंति बंधवा विहडेइसंचिओ अत्थो।
एक्कंनवरि न विहडइनरस्स पुव्वक्कयं कम्मं।।
— पुव्वकय — कम्मवज्जा, 2/672

अर्थात्, पुत्र साथ छोड़ देते हैं, भाई–बन्धु साथ छोड़ देते हैं और संचित धन भी साथ छोड़ देता है। केवल अकेला पूर्वकृत कर्म ही मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता है। कहा भी है — 'अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।।

विवेक की अनिवार्यता :

मा होसु सुयग्गाही मा पत्तीय जं न दिट्ठ पचक्खं।
पच्चक्खे विय दिठ्ठे जुत्ता जुत्तं वियारेह।।
— नीइवज्जा, 90/7

अर्थात्, सुनी बात को मत ग्रहण करो। जिसे देखा–सुना नहीं, उस पर विश्वास न करो। अपनी आंखो से देखने पर भी उचित और अनुचित का विचार करो। इसी प्रकार की विवेचना–'अति. दुज्जण वज्जा' में गाथा 64.1 से 64.5 तक भी की गयी है।

साहस : साहसी पुरुषों के लिए सुमेरू पर्वत तृण के समान, स्वर्ग घर के आंगन के समान, आकाश हाथ से छुए हुए के समान और समुद्र क्षुद्र नदियों के समान हो जाता है।

मेरू तिणं व सग्गो घरंगणं हत्थछित्तं गयणथलं।
वहलिया या समुद्दा साहसवंताण पुरिसाणं।। (105)

अर्थात्, धैर्य–सम्पन्न मनुष्य अपने साहस से कर्मरत्न का कुछ ऐसा उद्योग करते हैं जो बड़े–बड़े महानुभावों को भी आश्चर्यचकित कर देता है।

तं किं पि कम्मरयणं धीरा ववसन्ति साहसवसेणं। (साहसवज्जा, 5/111 भी दृष्टव्य है)।

धैर्य : धीरज : "धीर वज्जा" (गाथा 91–106) में धैर्य को मानव जीवन में सफलता का आवश्यक अंग माना गया है। उसकी समानता आकाश, समुद्र और सुमेरू पर्वत से की गयी है।

ता वित्थिण्णं गयणं ताव च्चिय जलहरा अइगहीरा।
ता करूया कुलसेला जाव न धीरेहि तुल्लंति।।
(104/14)

अर्थात्, आकाश तभी तक विस्तीर्ण है, समुद्र भी तभी तक अति अगाध है, और कुलशैल तभी तक बड़े हैं, जब तक उनकी तुलना धीरों से नहीं की जाती।

स्नेह : पडिवन्नं जेण समं पुव्वणिओगेण होइ जीवस्स।
दूरट्ठिओ न दूरे जह चन्दो कुमुयसंडाणं।।
— नेह—वज्जा, 76/4

अर्थात्, पूर्वकृत कर्म की प्रेरणा से जीवन जिसके साथ प्रीति का सम्बन्ध जोड़ लेता है वह दूर रहने पर भी दूर नहीं रहता, जैसे चन्द्रमा मुकुदवन से। नेह—वज्जा : (गाथा – 73–80) भी दृष्टव्य है।

मित्रता : एक्कं चिय सलहिज्जइ दिणेसउियहाण नवरि निव्वहणं।
आजम्म एक्कमेक्केहि जेहि विरहोच्चिय न दिट्ठो।।
— मित्तवज्जा, 65/1

अर्थात्, अकेले सूर्य और दिन का प्रणय—निर्वाह प्रशंसनीय है, जिन्होंने आजन्म एक दूसरे का वियोग ही नहीं देखा।

मित्तं पयतोयसमं गाथा, 67/3।।

तथा

तं मित्तं कायव्वं जं किर वसणम्मि देस—कालम्मि।
आलिहियभित्तिबाउल्लयं व न परंमुहं ठाई।।
— मित्त—वज्जा, गाथा 68/4

अर्थात्, मित्र उसे बनाना चाहिए जो भित्ति—चित्र के समान किसी भी संकट और देश—काल में कभी विमुख न हो।

अनासक्ति : भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन में "अनासक्ति" मानव के उत्थान का सर्वोत्कृष्ट साधन माना गया है –

विहवक्खए वि दाणं माणं वसणे वि धीरमा मरणे।
कज्जसए वि अमोहो पसाहणं धीरपुरिसाणं।।
— अति. गाथा 119/1

अर्थात्, धन क्षीण हो जाने पर दान, व्यसन (संकट) के समय में भी मान, मरने पर भी धैर्य और अपने किया—कलापों में भी मोह—ग्रस्त न होना – अनासक्त रहना – ये धीर पुरुषों के आभूषण हैं।

आत्म—गौरव/ स्वाभिमान हमारी सांस्कृतिक विरासत है :

नमिऊण जं विढप्पइ खलचलणं तिहुयणं पि किं तेण।
माणेण जं विढप्पइ तण पित निव्वुइं कुड़इ।।
— धीर—वज्जा, 100/10

अर्थात्, दुर्जनों के चरणों में प्रणत होकर यदि तीनों लोको की सम्पत्ति अर्जित कर ली जाय, तो उससे क्या? सम्मानपूर्वक यदि तृण भी अर्जित

हो, तो वह सुख देता है। ऐसा ही विश्लेषण इस ग्रन्थ में बहुलता से प्राप्त होता है। गाथा सं. 94/10, 96/10, 97/10 आदि भी दृष्टव्य हैं।

उपसंहार : आधुनिक जीवन शैली भौतिकता की चकाचौंध और वैज्ञानिक मशीनीकरण से अनुप्राणित है। इस युग में काम और अर्थ पुरुषार्थ की प्रधानता सर्वत्र दिखाई दे रही है। अध्यात्म और नैतिकता के प्रशिक्षण के अवसर नगण्य हैं। इस सबके मध्य श्रद्धास्पद तो वे ही महानुभाव हैं जो स्वाभिमानी, शुद्ध, समर्पित और सेवाभावी जीवन जीते हैं , भारतीय सांस्कृतिक चेतना–समन्वित हैं, तथा अपने सिद्धांतों में जिनकी अडिग आस्था है। इसीलिए **वज्जालग्गं** कहता है कि भगीरथ प्रयत्न किये, समुद्र का आलोडन–विलोडन कर डाला; उससे चन्द्रमा की शीतलता का सुख तथा लक्ष्मी–वैभव सा भौतिक चकाचौंध का परिवेश तो मिल गया, परन्तु सज्जनता का निर्माण अभी भी शेष है –

महणम्मि ससी महणम्मि सुरतरु महणसंभवा लच्छी।
सुयणो उण कहसु महं न याणिमो कत्थ संभूओ।।
– सज्जणवज्जा, 32/1

वस्तुतः इस ग्रन्थ का जीवन मूल्य–निदर्शक शाश्वत सन्देश है कि –

एयं वज्जालग्गं सव्वं जो पढ़इ अवसरम्मि सया।
पाइयकव्वकई सो होहिइ तह कित्तिमंतो य।।
– वज्जालग्गं, गाथा 5

अर्थात्, जो महानुभाव इस **वज्जालग्गं** ग्रन्थ को उचित अवसर पर सदैव पढ़ता है, वह समर्थ कवि/चिन्तक/मनीषी और यशस्वी होता है।

(संदर्भ विशेष के लिए पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, से 1984 में प्रकाशित *वज्जालग्गं* तथा वाराणसी से ही 1988 में प्रकाशित डॉ. एन.सी. शास्त्री का *प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*, दृष्टव्य हैं)।

निदेशक, संस्कृत प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र, 28, सरोज सदन, सरस्वती कॉलोनी, दमोह (म.प्र.)–470661

नारी की मर्यादा

– सौ. मंजरी जैन

सृष्टि के दो मुख्य उपादान हैं – नर और नारी। जिस प्रकार प्राकृतिक नियमन के लिए धन और ऋण गुणों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार मानव जाति की कल्पना बिना नर और नारी के सम्भव नहीं है। कोई भी सामाजिक व्यवस्था इन दोनों के परस्पर समन्वय पर ही आधारित हो सकती है।

वास्तव में सृष्टि के मूल में नारी ही है, तभी प्रकृति को और भूमि को नारी के रूप में देखा गया है। इसके सहज गुण है – उत्पत्ति करना, पोषण करना, धैर्य रखना और क्षमा करना। इन्हीं गुणों के आधार से मानव ने आदिम युग में ही नारी की 'अम्बा देवी' या 'मातृ–देवी' के रूप में अभ्यर्थना की है। मातृ–देवी की पूजा का प्रचलन आदिम युगीन संस्कृतियों में तो था ही, सभी ज्ञात प्राचीनतम ऐतिहासिक संस्कृतियों में भी उसका प्रचलन प्राप्त अवशेषों से विदित होता है। हमारे देश की प्राचीनतम सभ्यता सिन्धु घाटी की सभ्यता मानी जाती है जिसका काल लगभग 5000 वर्ष पूर्व आंका गया है। इस सभ्यता के अवशेषों में भी मातृदेवी की पूजा के चिह्न मिले हैं। अन्य प्राचीन सभ्यताओं, यथा मध्य एशिया की सुमेर–बेबिलोन की सभ्यता, में भी 'मां अम्बे' की पूजा का प्रचलन रहा था, ऐसा पुरातत्ववेत्ताओं का मत है।

वैदिक आर्यो में प्रारम्भिक काल में कदाचित् नारी को वह प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त थी जो कि उसे अन्य सभ्यताओं में प्राप्त थी। वेदमंत्र प्रायः पुरुष शक्ति को सम्बोधित हैं और वैदिक ऋषियों में भी प्रायः पुरुष ही हैं। वैदिक ऋचाओं के रचने वालों में केवल तीन महिलाओं के नाम प्राप्त होते हैं जो विश्वधरा, अपाला और घोष हैं। उपनिषद् काल में भी केवल गार्गी और मैत्रेयी के नाम उपलब्ध होते हैं। सम्भवतः आर्य संस्कृति में पुरुष–प्रमुखता ही आगे चलकर **मनु के धर्मशास्त्र** में नारी के लिए किंचित् अभिशप्त स्थिति का निरूपण करने के लिए उत्तरदायी है। मनु के अनुसार नारी के लिए स्वातन्त्र्य निषिद्ध है। प्रायः मनु के इस वाक्य को लेकर कि 'जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं', यह कह दिया जाता है कि मनु का दृष्टिकोण नारी के प्रति उदार था। परन्तु ऐसी एक–दो उक्तियों से मनु के दृष्टिकोण में नारी के प्रति उदारता का पोषण बहुत समीचीन नहीं है। वास्तव में जिस परम्परा के अन्तर्गत मनु ने अपना विधान बनाया, उसमें नारी को स्वतन्त्र स्थान प्राप्त था ही नही। यज्ञ आदि में नारी को तभी स्थान प्रदान करने का प्रश्न उठता था जब यज्ञ–विधि किसी कारण उसके बिना पूरी न की जा सके और उसमें भी नारी को कुछ ऐसे रूप में रखा जाता था जो यज्ञकर्ता के शक्ति–संचय का

माध्यम मात्र हो। अतः मनु के दृष्टिकोण में और उनके धर्मशास्त्र से निसृत व्यवस्था के अन्तर्गत नारी को समानता का अथवा सम्मान का स्तर दिए जाने के लिए उपयुक्त आधार नहीं था।

भारत की श्रमण परम्परा में नारी के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया गया प्रतीत होता है। इस परम्परा के दो प्रतिनिधि धर्म क्रमशः जैन धर्म और बौद्ध धर्म हैं। दोनों ही धर्मों में चतुर्विध संघ की व्यवस्था की गई है जिसमें नर और नारी को समान रूप से सम्मिलित किया गया है। इस चतुर्विध संघ के अंग हैं – उपासकों में श्रावक और श्राविका, तथा गृह–त्यागियों में भिक्षु–भिक्षुणी या मुनि–आर्यिका। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि महात्मा बुद्ध ने उपासकों के रूप में स्त्रियों को प्रारम्भ से ही स्वीकार कर लिया था, उन्हें भिक्षु संघ की सदस्या के रूप में स्वीकार करने में बुद्ध को काफी अन्तर्द्वन्द का सामना करना पड़ा था और अपनी मौसी तक को दीक्षित करने में उन्हें काफी असमंजस रहा था। परन्तु बुद्ध के समकालीन तीर्थंकर महावीर को स्त्रियों को भी अपने मुनिसंघ में सम्मिलित करने में प्रारम्भ से ही कोई आपत्ति रही थी, इसका उल्लेख साहित्य में नहीं मिलता। एक विशिष्ट घटना का सम्बन्ध महावीर से जुड़ा हुआ है और वह है चन्दनबाला का दासी अवस्था में महावीर को आहार कराना और अन्ततः महावीर के संघ में दीक्षित होकर उनकी आर्यिका संघ का प्रधान बनना। यह घटना इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि महावीर को स्त्रियों के विरुद्ध कदाचित् कोई पूर्वाग्रह ऐसा नहीं था कि वह उनके बताए हुए तपस्या और सदाचार के मार्ग पर चल न सकेंगी।

जैन धर्म में नारी को समादर की दृष्टि से देखा गया है और पूजा आदि विधानों में उन्हें समान भागीदार बनाया गया है। श्राविकाओं को पूजा करने का उतना ही अधिकार है जितना कि श्रावक को।

जैनों की समाज व्यवस्था पर जैनेतर हिन्दू समाज व्यवस्था का प्रभाव रहा है और इसके कारण सामाजिक दृष्टि से नारी के प्रति दृष्टिकोण में जैन समाज और जैनेतर हिन्दू समाज में विशेष अन्तर नहीं है। जैन कथा साहित्य में लोक–संस्कृति का जो रूप उभरता है उसमें बहु–विवाह, नारी द्वारा पति को इष्ट देव के रूप में मानने, और नारी को आर्थिक रूप से पति अथवा पुत्रों के ऊपर आश्रित होने, के उल्लेख मिलते हैं। यह रूप सामान्य भारतीय समाज का चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें स्त्री को भोग्या, अबला और आश्रिता के रूप में समान्यतया देखा गया है। तो भी जैन कथाओं में एक यह विशिष्टता रहती है कि नारी चरित्र को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है और उसकी धार्मिक क्षेत्र में समानता को अक्षुण्ण रखा गया है। यह विशिष्टता जैन कथा साहित्य को एक ऐसा महत्व प्रदान करती है जो

उसे भारतीय समाज में नारी की मर्यादा के समुचित मूल्यांकन के लिए एक आवश्यक स्रोत बताता है।

समाज में नर/नारी के सम्बन्धों में एक समन्वयात्मक एकात्म होना अपेक्षित है। यह तभी सम्भव है जब दोनों को एक सीमा तक समानता का स्तर प्रदान किया जाए। सदाचार के यदि कोई नियम सामाजिक व्यवस्था के लिए निर्धारित किए जाते हैं तो उनका विधिवत् पालन पुरुष के द्वारा भी उतना ही होना अभीष्ट है जितना कि स्त्री के द्वारा, इस बात को जैन धर्म में सिद्धान्ततः माना गया है और आर्यिका को श्रावक और मुनि के समकक्ष स्तर प्रदान किया गया है। इस दृष्टिकोण और उसी के फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में श्राविका का कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से सामाजिक जीवन पर भी पड़ा है और इसके परिणामस्वरूप जैन समाज में प्रायः बहु–विवाह एवं अन्य कुरीतियों के उदाहरण कम मिलते हैं। जैन साहित्य में भी इसकी प्रतिच्छाया दीख पड़ती है यद्यपि सामाजिक चित्रण बहुत कुछ सामान्य जनजीवन के अनुरूप है जिस पर देश और काल की परिस्थितियों का आर्थिक प्रभाव है तो भी धर्माचरण में प्रवृत्त जैन नारी की विशेषता बनाए रखी गई है।

किसी भी जाति और राष्ट्र की समुन्नति का मूलाधार उसकी नारियां हैं क्योंकि उन्हीं पर प्रथमतः देश के भावी नागरिकों के निर्माण का दायित्व होता है। यदि नारियां आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान से सम्पन्न होंगी तो वे ये गुण अपने बच्चों में भी सहज रूप से प्रतिस्थापित कर सकेंगी। अतएव **यह आवश्यक है कि नारी को एक ऐसी मर्यादा प्रदान की जाए जिसमें उसे समानता का स्तर सहज ही मिल जाये और वह किसी हीन–भावना से अपने को ग्रसित न होने दे। आवश्यक यह है कि वह अबला और आश्रिता न रहे, यह आवश्यक नहीं है कि वह सबला और स्वामिनी हो जाये।** जो चित्रण नारी चरित्र का और नारी के स्वभाव का आधुनिक कथा साहित्य में किया जाता है, वह प्रायः एक पूर्वाग्रह से उद्भूत है क्योंकि उसकी कल्पना करने वाला अधिकांश पुरुष होता है। जो नारी लेखिकाएं भी हैं वे भी साहित्यिक परम्पराओं के घेरे में बंधकर उसी पूर्वाग्रह का पोषण करने लगती हैं। इस सबका एक प्रभाव यह होता है कि साहित्य में जो चित्रण उपलब्ध होता है वह प्रायः एकांगी होता है और कदाचित् सामाजिक स्थिति की यथार्थता को प्रदर्शित नहीं करता। इस प्रसंग में मैं लेखक–वृन्द से यह निवेदन करना चाहूँगी कि वे साहित्य में नारी के प्रति अपना पूर्वाग्रह छोड़ कर सम्मानप्रद समानता का दृष्टिकोण अपनावें।

✦✦✦

Psycho-healing *Prekshā* therapy of forgiveness

- Dr. Samani Shashi Prajñā

Life is five percent of what happens to you and ninety-five percent what you make of what happens to you. You do have choice at all times. Yes, bad and good things happen to everyone but whether you let them colour your life or just add shade to it, is up to you.

Every religion asserts forgiveness as the innate virtue lying within human race. Remember, one has the choice of treating every experience as a chance to fuel the fire of one's rage or as an opportunity to practise forgiveness. Forgiveness is a choice for those who choose to change one's thoughts, beliefs and ideas constructively about a situation or a person and decide to let go the negative emotions that an unpalatable experience evokes. Forgiving is a decision that one is free to make. Some make it early, some late, some not at all, but it is a gift available to all of us. Now let us examine the consequences of forgiving earlier, forgiving late and not at all forgiving.

A wise man will make haste to forgive, because he knows the full value of time and will not suffer it to pass away in unnecessary pain. He is well aware of the fact that if others do harm to us, they remain accountable for their actions. So he follows the forgiveness therapy and forgets the wrong done to him and tries to forgive as soon as possible for the good of the self. We find a plethora of events which show that great personalities like Tīrthaṅkara Mahāvīra forgave Caṇḍakauśika serpant and Saṅgama Deva who gave so much hardships to him. Jesus Christ forgave on the cross the persecutors, by saying that 'Father! forgive them, for they know not what they do'. Socrates forgave the soldier who gave him pharmacon, *i.e.,* poison. Because they knew the truth that 'to err is human and to forgive divine' and applied this in their practical life. Gandhi ji rightly suggested that love the sinner and hate the sin. When can this happen? When one stops feeling angry or resentful towards someone for an offence, flaw or mistake. When a wise man realizes that the best reply to any insult or unseemly behaviour is in patience and in moderation, he rejects the sense of injury and the injury itself disappears. He writes the bad things

that are done to him in sand, but writes the good things that happen to him on a piece of marble.

So, true forgiveness is nothing but willingness to change one's mind about oneself. Francis Bacon rightly said that the sun, though it passes through dirty places, yet remains as pure as before. Likewise a man of patience and optimistic attitude keeps oneself in the state of equanimity and tolerates all the favourable and unfavourable situations forgiving everyone unconditionally. So, through forgiveness to wrong doer, one learns to love and laugh again. So, Jain seers recommend daily use of forgiveness for internal bliss and for universal brotherhood and friendliness. Thus forgiveness therapy is a self healing process which starts with you and gradually extends to everyone else.

On the other hand, those who make delay in forgiving or few others who deny to forgive someone throughout one's life, ever remain selfless and loose their inner bliss. If one doesn't forgive, one keeps his pain alive. How long will one continue to do this? The energy that one spends in maintaining one's negative emotions, *i.e.*, anger, hatred etc., cannot change the truth of what happened. Holding on to anger is like grasping a hot coal with the intent of throwing it at someone else, you are the one who gets burned, However, holding to the pain and the embarrassment continually causes one to revisit the past and that infects the present. In despair one loses hope and the willingness to trust. The bottled-up rage can ruin 'the today and tomorrow' just as it ruined 'the yesterday'. Moreover, one's emotional fragility, depression or anger may also adversely affect one's friends, family and co-workers.

Lastly, the person who fails to apply 'this forgiveness therapy' creates lots of fuss, commotion and disharmony in the society, because forgiveness is neither easy to give nor to receive. It is a very difficult task. Right from the beginning of the pages of history, we find a host of events which show the inherent difficulties in forgiving during certain circumstances in one's life. Remember the incident in the great epic, the **Mahābhārata**, in which remark bluntly made by Draupadī against Duryodhana, *i.e.,* 'Blind son of the blind father,' laid the platform for the whole chain of events which followed it. Duryodhana took this as an issue of great insult. With the ulterior motive of taking revenge, he organized the chess

play with the Pāṇḍavas. With the tactfulness of Śakuni, he defeated the Pāṇḍavas. Finally, the Pāṇḍavas having nothing else to gamble upon, made Draupadī the scapegoat, the Pāṇḍavas were again defeated in this round. Duryodhana, who wanted to pay Draupadī in the same coin, called her to the courtyard and dehumanised her notoriously. Again, Draupadī was not able to forgive Duryodhana and Duśāsana. Out of rage she took the oath of washing her unbounded hair with the blood of Duśāsana. So, it is clear that revenge begets revenge. We get a similar example of revenge which continued to the extent of nine successive births between Guṇasena and Agniśarmā as found in the Jain text **Jñātādharma Kathā Sūtra**. All such incidents occur because of the inability to forget the insult or to forgive for the mischievous act meted out to the person concerned. Revenge is the worst form of anger.

When one reacts to the unfavourable situation right away, then it is known as anger. But in revengeful nature, one keeps in his mind and plans for revenge in the future. The mundane soul has anger within him since time infinite, but by taking the shelter of the forgiveness, one cultivates nature of the soul which is free of anger. As per my view, revengeful nature is much more dangerous than anger. Anger is like fire and it produces burn right away but when one keeps anger within and plans for revenge then he keeps on burning from within all the time.

In such a state a person loses one's control over the conscious mind as well as sub-conscious mind and behaves like an insane person. When a person is diagnosed by psychiatrist, he just tries to vomit out everything through the process of self hypnosis and the speaking subject is cured from his prejudiced meaningless thought process. On the other hand, the non-forgiving attitude of the person if not checked in time may lead oneself to psychical problems of depression, suicide, so on and so forth.

So, under the umbrella of therapeutic thinking, we have used contemplation for effecting attitudinal change, acquiring virtues, achieving goals, activating the inbuilt curing system, solving problems, enhancing skills, etc. Here the practitioner applies his/her reasoning mind to bring about the desired effect, using the technique of auto-suggestions and intense-willing. For example, in order to transmute the instinct of anger, one must reason out

why this instinct is harmful. Only then the auto-suggestions of always remaining calm will make sense. Nobody gets motivated without a good reason, and no goal can be achieved without enough self motivation.

Prekshā Meditation, a technique of psyco-healing, prescribes a capsule course to get rid of this vice of anger and revenge and enrich the virtue of forgiveness in the self through the regular practice of contemplation of tolerance.

Technique of Contemplative Meditation for Increasing Tolerance

Step 1 Mahāprāṇa dhvani (nine times)

Step 2 Regulate your breath, making it slow, deep and rhythmic.

Step 3 Total relaxation (ten minutes)

Step 4 Centre : Centre of Purity at the throat, Thyroid gland.
Colour : Visualize bright green colour.

Step 5 Contemplation : The physical discomfort resulting from seasonal changes, sensation produced by diseases, mental sensations of pleasure and pain, comfort and discomfort, emotional sensation, opposing views, opposing nature, opposing taste etc. affect me but I should not be swayed by them. Least I am affected, greater would be my strength. Developing the power of tolerance is the key to success in my life.

Step 6 Auto-suggestions : I am developing power of forgivness. I am becoming more and more tolerant. My resistance power is increasing. I can resist against any physical, mental or emotional discomfort. I can keep myself cool and calm under any given circumstances.

Step7 Concentrate your mind on the forehead, centre of enlightenment and visualize clear bright white colour of full moon light and establish peace of mind. Terminate process of meditation by taking 2-3 slow, deep breaths.

Associate Professor, Department of Jainology, Comparative Philospohy and Religion, Jain Vishva Bharati University, Ladnun.

नज़रिया

— श्री अमरनाथ

बदलो तुम नज़रिया जीवन का। बदलो तुम नज़रिया निज मन का।
मत सोच बुरा, नहीं करो बुरा, कर डालो भला तुम जन–जन का।।
बदलो तुम नज़रिया जीवन का।

क्या लाया था, क्या जाये लिये? क्यों रहा मोह भरमाए हिये?
आया था बांधकर मुठ्ठी तू, हाथों को जाये पसार किये।
बचपन में भूख थी भोजन की, फिर रहा तू भूखा है धन का।।
बदलो तुम नज़रिया जीवन का।

तू स्वयं भोग, जो माथ तेरे, न थामता कोई हाथ तेरे।
इकला ही चलो तुम पगडण्डी, कोई न चलेगा साथ तेरे।
तू जिसको सुख–दुख मानता है, वह खेल है सारा बस मन का।।
बदलो तुम नज़रिया जीवन का।

जितनी भी मिलेगी भौतिकता, उतनी जागेगी मन में व्यथा।
सोना खाकर, सोने को तरस, यह स्वर्ण–जीवन की लौह–कथा।
मन लोहा अगर तुम कर डालो, मिल जाये स्वर्ण तब जीवन का।।
बदलो तुम नज़रिया जीवन का।

401–ए, 'अभिषेक',
उदयन–1, बंगला बाजार,
जेल रोड, लखनऊ–2

+++

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ0प्र0
प्रतिवेदन वर्ष 2017–18

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, का गठन सन् 1976 ई0 में 24वें तीर्थंकर भगवान वर्धमान महावीर स्वामी का 2500वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित **श्री महावीर निर्वाण समिति, उ0प्र0,** की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सोसायटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीनीकरण यथासमय कराया जाता है।

समिति का वर्ष 2016–17 का प्रतिवेदन **शोधादर्श–85** (वर्ष 2017) के पृष्ठ 149–153 पर प्रकाशित है। यहां वर्ष 2017–18 (1 अप्रैल, 2017 से 31 मार्च, 2018) का प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

आलोच्य वर्ष में समिति की प्रवृत्तियों की प्रगति निम्नवत रही :–

1 तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष 1976 की श्रुत पंचमी को की गई थी और इसका विधिवत उद्घाटन 23 अक्टूबर, 1976, को प्रदेश के तत्कालीन ग्राम्य विकास मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था। पुस्तकालय और उससे संलग्न वाचनालय श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट, चारबाग, लखनऊ द्वारा धर्मशाला के प्रथम तल पर उपलब्ध कराये गये एक कक्ष में प्रारंभ किया गया था, जो मई 2001 से धर्मशाला के द्वारा भूतल पर किराये पर उपलब्ध कराये गये दो कक्षों में चल रहा है।

समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के सदस्य भी हैं जिनकी संख्या इस वर्ष 52 रही। लखनऊ में चारबाग ही नहीं वरन् आसपास की कॉलोनियों के जैन परिवार तथा अनेक जैनेतर जिज्ञासु महानुभाव भी पुस्तकालय के सदस्य हैं। कुछ सदस्य लखनऊ के बाहर के भी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक

अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मो, दर्शनों एवं संस्कृति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण साहित्य संग्रहीत है। अपने विशिष्ट संकलन के लिये इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में यह पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ, कानपुर व अन्य विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। सामान्य रुचि के पाठकों के लिए लौकिक एवं सामान्य ज्ञानवर्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

वर्ष 2017–18 में पुस्तकालय में 281 पुस्तकों की वृद्धि हुई। राजा राममोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता, से प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में 185 पुस्तकें प्राप्त हुई। दो पुस्तकें क्रय की गई और 94 पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुई।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में प्रायः 100 धार्मिक, सामाजिक, सामयिक एवं शोध पत्र–पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, षट्मासिक और वार्षिक) समिति की शोध–पत्रिका **शोधादर्श** के परावर्तन में प्राप्त होती हैं।

पुस्तकालय–वाचनालय से प्रतिदिन प्रायः 20–25 पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय–वाचनालय का समय प्रातः 10.00 से अपराह्न 2.00 बजे तक है। शनिवार और सार्वजनिक अवकाश पर पुस्तकालय–वाचनालय बन्द रहता है।

पुस्तकालय–वाचनालय का कार्य पूर्ववत पुस्तकालय व्यवस्थापिका श्रीमती हेमा सक्सेना, एम0ए0, द्वारा सुचारु रूप से देखा जाता रहा।

2 शोधादर्श

जैन विद्या की शोध को समर्पित शोध–पत्रिका **शोधादर्श** का प्रकाशन फरवरी 1986 में समिति द्वारा प्रथम अंक के प्रकाशन से प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य–सम्पादक इतिहास–मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन थे। जून 1988 में उनके स्वर्गवास के उपरान्त अंक 7 से प्रधान सम्पादक के दायित्व का निर्वहन डॉ. शशि कान्त ने किया। अंक 30 (नवम्बर 1996) से अंक 56 तक प्रधान सम्पादक के कार्यभार का सम्पादन श्री अजित प्रसाद जैन ने किया। उनके निधन के उपरान्त अंक 57 (नवम्बर 2005) से अंक 67 (मार्च 2009) तक श्री रमा कान्त जैन ने इसके सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया।

अंक 68 (नवम्बर 2009) से **शोधादर्श** के सम्पादन का दायित्व, डॉ. शशि कान्त जैन के मार्गदर्शन में, मेरे द्वारा निर्वहन किया जा रहा है।

वर्ष 2017 में **शोधादर्श** का अंक 85 युग–पुरुष–त्रयी स्मृति विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया। यह 204 पृष्ठों का सचित्र अंक था। इसमें युग–पुरुष श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, उनके अनुज श्री अजित प्रसाद जैन और उनके कनिष्ठ पुत्र श्री रमा कान्त जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित विशेष सामग्री संकलित है। इन मनीषियों के चिन्तन प्रसून भी संकलित हैं, जो शाश्वत चिन्तन को प्रोत्साहित करने में उपयोगी हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त भी शोधपूर्ण लेख और समाज चिन्तन को जाग्रत करने वाले लेख संग्रहीत हैं। डॉ. अनिल कुमार जैन का लेख "हिन्दुत्व की हवा में कहीं जैनत्व न खो जाये" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साहित्य सत्कार के अंतर्गत 16 कृतियों की समीक्षा की गई है। अन्य स्तम्भ भी यथावत् हैं। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

3 तीर्थंकर छात्र सहायता कोष

इस वर्ष आर्थिक दृष्टि से निर्बल 77 विद्यार्थियों को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. 71602.40 का व्यय किया गया।

4 लेखे की स्थिति

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी श्री आलोक जिन्दल, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट, द्वारा किया गया और उनके माध्यम से आयकर कार्यालय को आवश्यक विवरणी यथासमय प्रस्तुत की जायगी।

शासन से प्राप्त पुस्तक अनुदान तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप प्राप्त साहित्य के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां वर्ष में रु0 2,18,419.00 रहीं (इसमें रु0 300/– पुस्तकालय सिक्योरिटी राशि भी है जो रिफन्डेबिल है) तथा व्यय रु. 1,79,081.10 हुआ। फिक्स डिपॉज़िट निवेशों में रु. 50,,000/– की वृद्धि कर दी गई। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका संलग्न है। इसमें पुस्तकालय–वाचनालय का मासिक किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्ने लाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम धनराशि से होता है।

मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट को दी गई अग्रिम किराये की अवशेष राशि रु. 89,600/— में से वर्ष 2017—18 में रु. 1600/— की दर से रु. 19,200/— की धनराशि मासिक किराये के रूप में समायोजित की गई, और अग्रिम किराये की राशि रु. 70,400/— अवशेष रही।

5 अन्य प्रवृत्तियां

वित्तीय वर्ष 2016—17 (असेसमेन्ट वर्ष 2017—18) का इन्कम टैक्स रिटर्न यथासमय जमा कर दिया गया। रजिस्ट्रार, सोसायटीज, उ0प्र0, लखनऊ, को यथावश्यक सूचना प्रेषित की जाती रहीं।

6 अन्तिम

विगत वर्ष 2017—18 की सभी प्रवृत्तियों के सम्पादन में मुझे समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन का तथा प्रबन्ध समिति के सभी माननीय सदस्यों का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन निरंतर उपलब्ध रहा। सभी कियाकलापों में समिति के माननीय सदस्यों का भी सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त रहा। इन सभी महानुभावों के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा व्यक्तिगत और नैतिक दायित्व है।

नलिन कान्त जैन
महामंत्री

25—6—2018

+++

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U.P.

Statement of Receipts & Payments for the Year ending 31st March, 2018

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
Balance b/d:			**Research Library:**		
F.D.Rs.	24,65,000.00		Salary Libr. Asstt.	64,800.00	
Savings Bank	68,891.04		Salary Cleaner	4,240.00	
Cash in Hand	1,111.00	25,35,002.04	Contingencies	363.70	
			Books	897.00	70,300.70
Research Library:			**Shodhadarsh Magazine:**		
Security Deposit	300.00		Stationery & Prtg.	29,490.00	
Subscription	820.00		Dispatch Postage	900.00	30,390.00
Misc. Receipts	610.00	1,730.00			
Shodhadarsh Magazine:			Stationery		459.00
Subscription	1,290.00		Postage		330.00
Donation	22,750.00	24,040.00	T.C.S. Kosh Scholarship Exp.		71,601.40
			I.T. Counsel's & Audit Fee		6,000.00
Interest on F.D.Rs.		1,89,973.00			
Interest on Savings Bank		2,676.00			
			Balance c/d:		
			F.D.Rs.	25,15,000.00	
			Savings Bank	58,772.94	
			Cash in Hand	567.00	25,74,339.94
		27,53,421.04			**27,53,421.04**

Compiled on the basis of information and explanations furnished.

For Avanish K. Rastogi & Associates
Chartered Accountants
Alok Jindal
Partner

साहित्य सत्कार

The World's Biggest Rakhi of Human Protection : Dr. Antarmana Muni Prasann Sagar; Pub. Bookmen Associates, 9, opp. Raj. University, Jawaharlal Nehru Marg, Jaipur-302015; 2017; pp. 247, with photographs; price Rs. 2000/-

The book is a sort of poster publication. It reminds of a Tilak and Rakhi function organized at National College ground, Bengaluru, on August 18, 2016, and also of a pilgrimage to Sammed Shikharji from September 25 to 28 in 2016, under the patronage of Muni Shri Prasann Sagar. In the profile it is not mentioned when Shri Prasann Sagar was awarded doctorate and what was the subject of his research thesis and which was the awarding University. The description is in English, but the language is not generally grammatically correct. The five principles prescribed in the direction of protection and progress of human values and world's peace, have not been positively defined. For world peace it is necessary that we rise above nationality and work for the welfare of all humanity.

In my humble opinion, such costly publications are a waste of money.

छन्दोदय : गोम्मटसार जीवकाण्ड : ले. बाबा दौलतराम वर्णी, प्रबन्ध सम्पादक श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.), सं. श्री प्रमोद जैन; प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003; वर्ष 2018; पृ. 487; मूल्य रु. 680/–

ईसा पूर्व प्रथम शती में आचार्य भूतबली एवं पुष्पदंत द्वारा प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध **षट्खण्डागम** के आधार पर 10वीं शताब्दी में नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने **गोम्मटसार** का प्रणयन किया था। **गोम्मटसार** में दो खण्ड हैं – जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड। बाबा दौलतराम वर्णी ने जीवकाण्ड पर हिन्दी में छन्दोबद्ध व्याख्या लिखी जो **छन्दोदय** के नाम से प्रकाशित है। छन्दों की रचना ब्रजभाषा में की गई है। सम्पादक श्री प्रमोद जैन ने सभी छन्दों का अर्थ भी दिया है : प्रक्रिया यह रही कि मूल गाथा और उसका छन्दोबद्ध अनुवाद तथा गद्य में अर्थ।

श्री सुरेश जैन ने अपने आमुख में बाबा दौलतराम वर्णी की 16 रचनाओं का उल्लेख किया है जिनमें **छन्दोदय** सर्वप्रथम है और इसकी

रचना 6 सितम्बर 1902 को सम्पन्न हुई। अन्य रचनायें 3 जनवरी 1904 से 30 मई 1904 के बीच रची गई।

श्री प्रमोद जैन ने अपने सम्पादकीय में ग्रन्थ की प्रस्तावना और उसके सम्पादन के सम्बन्ध में विवेचना दी है।

रचनाकार बाबा दौलतराम वर्णी के विषय में मात्र इतनी जानकारी मिलती है कि उन्होंने बुन्देलखण्ड के दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र नैनागिरि में 1902 से 1904 के बीच 16 रचनायें की और उनका समाधिमरण 1907–08 में नैनागिरि में ही हुआ। उनकी प्रेरणा से 1902 में 'बाबा दौलतराम वर्णी पाठशाला' भी स्थापित की गई। उनका जन्म बम्हौरी में श्यामले ब्या के परिवार में हुआ था परन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी नहीं है। यह अपेक्षित है कि उनके सम्पूर्ण जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाये और उसे प्रकाशित किया जाये।

— डॉ. शशि कान्त

✦✦✦

आभार

कानपुर के **श्री नेमिचंद जैन** ने अपने अनुज **श्री जवाहरलाल जैन** की पुनीत स्मृति में रु. 10,000 भेंट किये। श्री जवाहरलाल जैन का 71 वर्ष की वय में 10 जून 2017 को मधुमेह से पीड़ित होने के कारण असमय निधन हो गया था।

श्री लूणकरण नाहर जैन ने अपने परिणय की 61वीं जयंती पर रु. 6,100 भेंट किये।

अपनी माता **सौ. मंजरी जैन** की पुनीत स्मृति में उनके **पुत्र सर्वश्री शिरीष कान्त, नलिन कान्त एवं राजीव कान्त तथा पुत्री सौ. अलका एवं सौ. शेफाली** ने रु. 5000 भेंट किये।

नागपुर के **श्री आदिकुमार भगवंतराव बंड** ने रु. 500 भेंट किये।

✦✦✦

अभिनन्दन

16 मार्च, 2018, को **श्रीमती मनीषा जैन** को "आंचार्य कुन्द–कुन्द प्रणीत दस भक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन" विषयक शोध–प्रबन्ध पर जैन विश्वभारती, लाडनूं, द्वारा पी–एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

श्री संजय कुमार शाह को "महाभाष्य तृतीय अध्याय द्वितीय पादस्य प्रदीप टीका उद्योत दिशा में समीक्षणम्" विषयक शोध–प्रबन्ध पर जगत गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, द्वारा विद्यावारिधि (पी–एच.डी.) की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ. अनिल जैन भारतीय जनता पार्टी की ओर से उत्तर प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित हुए तथा **श्री अभिषेक मनु सिंघवी** इण्डियन नेशनल कांग्रेस पार्टी के टिकट पर पश्चिम बंगाल से राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए।

नागपुर के 82–वर्षीय **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'** ने अपनी पत्नी **डॉ. पुष्पलता जैन** के साथ सागर के दिगम्बर जैन महिला आश्रम में छात्रावास के निर्माण के लिए रुपये 51 लाख का दान दिया।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, द्वारा वाराणसी के **प्रो. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'** को संस्कृत–प्राकृत एवं जैन विद्या के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान के लिए एक लाख एक हजार एक रुपये का विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किया गया। लखनऊ की **डॉ. (श्रीमती) राका जैन** को संस्कृत में विशेष योग्यता के लिए रु. ग्यारह हजार का पुरस्कार प्रदान किया गया।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर, में अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र के निदेशक **डॉ. दिलीप धींग** को कुन्द–कुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार 2017 से सम्मानित किया गया। भोपाल के **पं. लालचंद्र जैन 'राकेश'** एवं **डॉ. रत्नचन्द्र जैन** को वर्ष 2015 एवं 2016 के कुन्द–कुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। **श्री शैलेन्द्र जैन** (लखनऊ) को ऋषभदेव पर शोध कार्य के लिए, और इंजी. **मनमोहन चन्द्र** (कोरवा) को ज्ञानोदय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। **श्री शांति लाल जांगड़ा**, उदयपुर, और **श्री सुरेश जैन**, भोपाल, को **अर्हत् वचन** में प्रकाशित लेखों के लिए पुरस्कृत किया गया।

ऋषभांचल के स्थापना दिवस पर "सान्ध्य महालक्ष्मी" पत्र के सिटी सम्पादक **श्री प्रवीण कुमार जैन** को गाजियाबाद में ऋषभांचल पुरस्कार से

सम्मानित किया गया। श्री प्रवीण कुमार 85—वर्षीय श्री श्रीकिशोर जैन के सुपुत्र हैं और अपने पिता के धार्मिक संस्कारों के अनुगामी हैं।

आयकर अधिकारी **श्री आशु जैन** (श्री धर्मवीर के सुपुत्र) को प्रिंसपल इन्कम टैक्स कमिश्नर के पद पर पदोन्नत किया गया।

श्री अखिलेश चन्द्र मित्तल को Havells (India) Ltd. में सीनियर जनरल मैनेजर के पद पर पदोन्नत किया गया।

आयु. आकांक्षा मित्तल, बी.टैक., को सिम्बाइसिस (Symbiosis) यूनीवर्सिटी, पुणे, द्वारा Finance M.B.A. (2016—18) के सर्वश्रेष्ठ छात्र के रूप में सम्मानित किया गया।

आयु. मेहा जैन, एम.ए., एम.फिल., को ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल साइन्सेज़ (AIIMS), पटना, में चाइल्ड साइकॉलॉजिस्ट के पद पर चयन के उपरान्त नियुक्ति प्रदान की गई।

***शोधादर्श* का समस्त परिवार और *तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति* उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश—वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

शोक संवेदन

2 फरवरी 2018 को सरधना में 82—वर्षीय **पं. सरमनलाल जैन 'दिवाकर'** का निधन हो गया।

22 फरवरी को मुजफ्फरनगर में 90—वर्षीय साहित्यकार **श्री वेद प्रकाश गर्ग** का निधन हो गया।

5 अप्रैल को इन्दौर में 'वीर निकलंक' पत्र के सम्पादक 71—वर्षीय **श्री रमेश कासलीवाल** का निधन हो गया।

13 अप्रैल को मनासा (जि. नीमच, म.प्र.) में वरिष्ठ साहित्यकार 87—वर्षीय **श्री बाल कवि बैरागी** का निधन हो गया।

24 अप्रैल को दिल्ली में 70—वर्षीय **श्रीमती स्नेहलता गुप्ता** का शरीर शांत हो गया।

16 मई को दिल्ली में 81—वर्षीय **श्री सतीश जैन** (आकाशवाणी) का निधन हो गया।

4 जून को आरा के 66—वर्षीय **श्री रंजीत सुन्दर दास जैन** का टोरन्टो (कनाडा) में निधन हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

✧✧✧

सुश्रावक श्री बसन्तराज तलसेरा जैन की लखनऊ से सपरिवार विदाई

बसन्तराज जी ज्ञानवान श्रावक आप हैं,
गुण रत्नों की अनुपम खान हैं।
सुयश आपका लखनऊ संघ में न्यारा,
ज्यों आकाश में चन्दा प्यारा।
मोतीलाल जी के सुपुत्र आप हैं,
मां सुवा के बाल गोपाल हैं।
तलसेरा कुल के दीपक बसन्त जी,
मरूधरा के लाल हैं।
शशि सी धर्म सहायिका आपकी,
सौरभ सा विनित सुपुत्र आपका।
टीना सी गुणवान बहुरानी आपकी,
आर्या अरिष्ठ से घर की देहरी चहकी।
सन् 89 में लखनऊ पधारे,
संघ के सारे काम संवारे।
संघ सेवा था ध्येय आपका,
संघ समर्पित परिवार आपका।
ज्ञान की यहां पर ज्योति जगाई,
क्रिया की उत्कृष्टता बताई।
लखनऊ संघ पर यह उपकार आपका,
नहीं भूलेगा संघ आपका।
29 साल बाद लखनऊ छोड़ने का मन बनाया,
सुनकर संघ में दुख गहराया।
हम सब की विनती आपसे,
पर्युषण पर्व पर मिलें आपसे।
भावभीनी संघ देता विदाई,
आपकी कमी की नहीं होगी भरपाई।
देव गुरू की परिवार पर मेहर रहे,
"नाहर" जीवन में सदा सुख चैन रहे।

— लूणकरण नाहर जैन

नाहर भवन, 514, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-4

समाचार विविधा

प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

29 जनवरी 2018 को आचार्य कुन्द–कुन्द व्याख्यान माला तथा डॉ. गुलाबचंद्र चौधरी स्मारक व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। मुजफ्फरपुर के डॉ. विजय कुमार ने जैन धर्म दर्शन की सर्वोदयी दृष्टि पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। वाराणसी की डॉ. सुधा जैन ने जैन जीवन शैली और योग विषय पर अपना विशेष व्याख्यान दिया। अध्यक्षीय वक्तव्य संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन ने दिया।

30 जनवरी को डॉ. हीरालाल जैन व्याख्यान माला तथा श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया।

भगवान महावीर के जन्म दिवस एवं वैशाली महोत्सव के अवसर पर "वर्धमान वैश्विक परिदृश्य में भगवान महावीर के उपदेश" विषय पर जगदीशचन्द्र माथुर स्मृति व्याख्यान माला का आयोजन किया गया।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र के वाराणसी क्षेत्रीय केन्द्र के सहयोग से दिनांक 11 जनवरी से 31 जनवरी को लिपि विज्ञान एवं पाण्डुलिपि विज्ञान पर कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें 28 विद्वानों द्वारा 58 व्याख्यान प्रस्तुत किये गये और कुल 78 सत्र संचालित हुये।

पुनः, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के सहयोग से 9–11 मार्च को "जैन अभिलेखों का ऐतिहासिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक महत्व" विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई। संगोष्ठी 6 सत्रों में सम्पन्न हुई और इसमें 25 शोध पत्र प्रस्तुत किये गये।

सीनियर सिटीज़न्स फ़ोरम, हरिद्वार

2 अगस्त 2010 को श्री सर्वेश गुप्ता ने भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्स लि. में एडीशनल जनरल मैनेजेर के पद से सेवा निवृत्त होने के उपरांत हरिद्वार में 'सीनियर सिटीज़न्स फ़ोरम' का शुभारंभ किया। वह इसके अध्यक्ष हैं। इस संस्था द्वारा वरिष्ठ नागरिकों के लिए 5 फिज़ियोथिरेपी सेन्टर और डे केयर सेन्टर का संचालन किया जाता है। प्रतिवर्ष अक्टूबर माह में 'सीनियर सिटीज़न्स डे' भी मनाया जाता है। गरीब वरिष्ठ नागरिकों को कम्बल बांटे जाते हैं और बुजुर्ग लोगों के लिए चिकित्सकीय कैम्प भी आयोजित किये जाते हैं। उत्तराखंड में वरिष्ठ नागरिकों की सेवा में संलग्न यह अकेली संस्था है। ✦✦✦

सौ. मंजरी जैन स्मृतिका

स्मृतिशेष संगिनी

64 वर्ष और प्रायः डेढ़ माह के साथ के बाद मुझे जीवन संगिनी का साथ छूटने का अनुभव 8 जनवरी 2018 को करना पड़ा। दिवंगत मंजरी से मेरा परिणय 27 नवम्बर 1953 को सम्पन्न हुआ था और 27 नवम्बर 2003 को परिणय की स्वर्ण जयन्ती तथा 27 नवम्बर 2013 को हीरक जयन्ती मनाने का सुयोग भी प्राप्त हुआ। विगत जून 2016 से वह अस्वस्थ और शैयाग्रस्त रही, परन्तु यह सुखद संदेश रहा कि उसे पक्षाघात नहीं हुआ यद्यपि 2017 के पूरे वर्ष वह मौन ही रहीं तथापि शरीर को किसी प्रकार क्षत–विक्षत करने की नौबत नहीं आई। 8 जनवरी 2018 पूर्वान्ह 10:30 बजे शरीर शान्त हो गया। 9 जनवरी को लखनऊ के बैकुण्ठ–धाम में विद्युत शवदाहगृह में उनकी सन्तान ने उनकी देह का विसर्जन किया जो उनकी इस इच्छा के अनुसार था कि प्रदूषण–मुक्त विधि से उनका अंतिम संस्कार किया जाये।

'नारी की मर्यादा' के सम्बन्ध में जो विचार उन्होंने 29 अक्टूबर 1975 को भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में 'भारतीय संस्कृति में जैन विचार धारा' विषयक संगोष्ठी में व्यक्त किये थे, उनको उन्होंने अपने जीवन में जिया भी। उन्होंने कहा था कि "यह आवश्यक है कि नारी को एक ऐसी मर्यादा प्रदान की जाये जिसमें उसे समानता का स्तर सहज ही मिल जाये और वह किसी हीन भावना से अपने को ग्रसित न होने दे। आवश्यकता यह है कि वह अबला और आश्रिता न रहे, यह आवश्यक नहीं है कि वह सबला और स्वामिनी हो जाये।" इसी को दृष्टि में रखते हुये उन्होंने 1970 से 1998 तक बच्चों के लिए एक विद्यालय का संचालन किया तथा अपने तीनों पुत्रों और दोनो पुत्रियों को सुशिक्षित और सुसंस्कारित किया।

उनके ज्येष्ठ पुत्र चि. शिरीष कान्त ने दयालबाग इन्जीनियरिंग कॉलेज से इंजीनियरिंग में ग्रेजुएशन किया और वह नगलामल शुगर मिल में मैनेजर के पद से सेवानिवृत्त हुये। द्वितीय पुत्र चि. नलिन कान्त ने बी.एस–सी., एल–एल. बी. तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद मुद्रण का अपना स्वतंत्र व्यवसाय स्थापित किया। तृतीय पुत्र चि. राजीव कान्त ने हार्कोर्ट बटलर इंजीनियरिंग कॉलेज से बी.टैक. किया और वह रेलवे की सेवा में प्रतियोगी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर जुडे तथा वर्तमान में चीफ इन्जीनियर के पद पर कार्यरत हैं। ज्येष्ठ पुत्री आयु.

अलका ने एम.ए., बी.एड. करने के बाद पी–एच.डी. की उपाधि भी अर्जित की तथा वह अध्यापन कार्य में लगी है, और उसके पति चि. अवधेश कुमार अग्रवाल भी एम.ए., एम.फिल., पी–एच.डी. हैं तथा नेहरू पोस्ट–ग्रेजुएट कॉलेज, ललितपुर, में प्रिंसिपल है। कनिष्ठ पुत्री आयु. शेफाली ने भी एम. ए., बी.एड. करने के बाद कम्प्यूटर में पोस्ट–ग्रेजुएट डिप्लोमा किया और उसके पति चि. अखिलेश चंद्र मित्तल, बी.टैक., हैवल्स (इंण्डिया) लि. में सीनियर जनरल मैनेजर के पद पर कार्यरत हैं। उसके बाद तीसरी पीढ़ी में उनके दो पौत्र बी.टैक. हैं और सुचारु रूप से व्यवस्थित हैं। तीसरा पौत्र चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट है जो अपने व्यवसाय में सुव्यवस्थित है। चौथा पौत्र बी. टैक. के अंतिम वर्ष में अध्ययनरत है। एक पौत्री एम.ए., एम.फिल. है और पटना में आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज़ में प्रथम श्रेणी के पद पर कार्यरत है। दूसरी पौत्री चंडीगढ़ के पोस्ट–ग्रेजुएट मेडिकल कॉलेज में एम.एस का अध्ययन कर रही है, उसने पुडुचेरी के मेडिकल कॉलेज से एम.बी.बी.एस. का शिक्षण स्वर्ण पदक प्राप्त कर पूरा किया था। उनकी एक नातिन एम.टैक. है, एक बी.टैक. है और एक नातिन बी.टैक., एम.बी.ए, है जिसने एम.बी.ए. में स्पृहणीय स्थान प्राप्त किया है। सबसे छोटी नातिन बी.टैक. का अध्ययन कर रही है। दो पौत्रों का और एक नातिन का विवाह भी सम्पन्न हो चुका है। विवाहित दोनों पौत्रों ने एक–एक प्रपौत्री का उपहार भी दिया है। सभी सन्तान सुशिक्षित होने के साथ ही अपने–अपने व्यवसाय में सुनियोजित हैं। इस सबसे मंजरी को अपने अंतिम समय में भी एक संतोष का अहसास रहा जो उनके शांतिपूर्वक प्राण विसर्जन का एक हेतु रहा।

अपनी सास सौ. अनन्तमाला और श्वसुर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के प्रति आदर और समर्पित सेवाभाव उनकी सन्तान के लिए प्रेरणास्पद रहा। अन्तिम डेढ़ वर्ष उनके बेटे और बहू ने जो सेवा–सुश्रुषा की वह उसी का प्रतिफल था। सभी पारिवारिक सम्बन्धों का स्नेह और सद्भावपूर्वक निर्वहन उन्होंने किया; अपने चचिया श्वसुर श्री अजित प्रसाद जैन और देवर रमा कान्त की वह विशेष आदर एवं स्नेह की पात्र रहीं।

27 नवम्बर 2013 को परिणय की हीरक जयन्ती पर सहसा यह उद्गार उनके मुख से प्रकट हुए –

साठ पग चले तुम्हारे साथ,
आगे भी तुम्हारा साथ बना रहे,
यही है भगवान से प्रार्थना।
शशि बगिया में रंग–बिरंगे फूल खिले हैं,
दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करें, यही है चाहना।

बच्चों का दाम्पत्य जीवन खुशियों से भरा रहे
यही माता–पिता की है अहर्निश भावना।

विगत जून 2016 से वह गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गयीं, परन्तु चेतन अवस्था में ही उन्होंने अपनी सन्तान को जो कुछ देना था दे दिया। जीवन से धीरे–धीरे निर्मोह होता जा रहा था। इस स्थिति के आने से कुछ दिन पहले उन्होंने अपने मनोभाव निम्नवत् व्यक्त किये थे –

आओ, तुमसे प्यार करें, मेरे हमराही!
तन–मन की कुछ बात करें, मेरे हमराही!
संध्या लेकर आई सबेरा, भोर हुई गया अंधियारा।
रात्रि जगमग दिया जले, कब होगा अपना किनारा।
आओ तुमसे———
तन–मन की कुछ————
साथ नहीं आये कोई साथ नहीं जाये,
ऐसा कोई जतन करो, जो पहले हो मेरा किनारा।।
आओ तुमसे——
तन–मन की कुछ———

यह उनके सौभाग्य की बात है कि उनकी इच्छानुसार उनका किनारा पहले हो गया।

उनकी आस्थावान प्रकृति, दानशील वृत्ति और उदार दृष्टि को देखते हुए उनके तीनों पुत्रों और दोनों पुत्रियों ने लखनऊ के दिगम्बर, श्वेताम्बर एवं स्थानकवासी जैन देवालयों को और शैव व वैष्णव देवालयों को तथा उनके पैतृक स्थान आरा के देवालय को, और दातव्य संस्थाओं को भेंट राशि भेजी, तथा विपन्न लोगों की मदद के लिए कम्बलों का वितरण किया – और इस सब पर एक लाख रुपये का व्यय किया।

11 जनवरी को उनकी 80वीं जन्म–जयंती भी होती अतः उस दिन शांतिपाठ और श्रद्धांजलि सभा का अयोजन किया गया तथा 21 जनवरी को शांतिपाठ के साथ विसर्जन किया गया। सभी सम्बन्धियों ने और मित्रों ने हमारे परिवार को सान्त्वना का जो सम्बल प्रदान किया उसके लिए मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। संगिनी के जाने से जीवन में रिक्तता का बोध होना स्वाभाविक है, परन्तु जिस शांति के साथ और सब–कुछ व्यवस्थित रूप में छोड़ कर उसने प्रयाण किया उससे एक प्रकार का सान्त्वना–बोध भी होता है।

छूट गया साथी!

शशि कान्त

स्नेह उद्‌गार

पौत्र चि. विभव :

The night is dark,
The night is cold
Where are you my dear light?
The Sun has gone, the Sun has set
Light has gone out of our lives,
Rest in peace Dadi !

✦

पुत्र चि. राजीव कान्त :

तुझमें मेरा भगवन मां!

हमें जहां में छोड़
तू छोड़ गयी जहां
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
मेरे हर हिस्से में तू
मेरे हर किस्से में तू
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
जीवन की धूप में
तेरे आशीष की छांव में
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
जीवन को लौ बना
हरदम हमें उजलाती मां
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
खुशी पे वारि तू
गम पे भारी तू
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
लक्ष्मी सरस्वती चंडी
सब समोये तुझमें मां
बहुत याद आती है तू, मेरी मां!
करूं सदा स्तवन मां
तुझमें मेरा भगवन मां
बहुत याद आती है तू, मेरी मां! ✦

जीजी श्रीमती शारदा जैन :

मां के आंगन में एक संग खेली, एक संग बड़ी हुई
कब बीता बचपन और हम जुदा हो गये
हम दोनों का परिवार मिला, हंसता खेलता साथ मिला
छोटी बहन हमारी कब सलाहकार बनी पता ही नहीं चला
अब वो यादों में रह गयी
फूलों सी महकी, और हवा में खो गयी
अब वो यादों में रह गयी
मेरी प्यारी बहना अपनी जिजिया को अकेला छोड़ चली,
अब वो यादों में रह गयी – यादों में रह गयी
ज्ञान बोध कराने वाली एहसास कराने वाली यादों में रह गयी।

मेरी मां जाई चली गई, मेरी बहना चली गई
मेरे सुख–दुख की कहानी सुनने वाली चली गई
राह दिखाने वाली चली गई
धर्म कर्म की चर्चा करती, कविताएं संशोधन करती
मेरा भजन, मेरी कविता उन्हें अच्छी लगती
उनका संशोधन करने वाली चली गई, मेरी बहना चली गई
बहुत खुशी है भरे–पूरे में चली गई, मेरे हृदय का कोना खाली हो गया
भरने वाली चली गई उनकी अंतिम सद्‌गति अच्छी हो
यही प्रार्थना है, मेरी मां जाई चली गई।

मेरी प्यारी बहना तू चली गई इस जग से
रहेगी सदा धड़कती मेरी दिल व रग–रग में
वैसे तो थी तू अनुजा मेरी
पर संगी सहेली सब कुछ थी मेरी।
मन शांत है कि पीड़ा से मिली मुक्ति तुझे,
पर सूना है आंगन व्याकुल है तन–मन बहन बिन तेरे।
जैसा अनुकरणीय जीवन था तेरा
वैसी ही भरी पूरी लाल चुनर से, सजा गमन था तेरा।
भगवान तेरी आत्मा को शांति दे
यही है तेरी जीजी की अन्तर्कामना!

मौसी के प्रति – श्रीमती सरिता अग्रवाल :

याद आता है वह सुहावना अवसर जब मेरे पूज्य मौसाजी एवं पू. मौसी मां की पचासवीं शादी की सालगिरह मनाई जा रही थी। हम सभी भाई–बहन एवं स्वजन कितने हर्षित थे। आज मेरी मौसी मां हमारे बीच नहीं हैं, पर उनकी यादें उन्हें हमेशा हमारे मन में जीवित रखेगीं। उस समय कुछ पंक्तियां मैंने उन्हें भेंट की थी जो आज भी सार्थक लगती हैं। श्रद्धांजलि के रूप में उन्हें सादर समर्पित –

ओ संगिनी मेरे मौसा जी के जीवन की
गीति ताल स्वर छन्द बंधी, मन प्राण हिए शीतल करती
मेरे नाना की बगिया सूनी कर,
चली आई परदेश मितवा संग–संग।
ओ संगिनी.......

भोर की फूटती किरण से चंदा की चांदनी तक,
सुख दुःख के सपने पिरोती संजोती दिवाली होली के रंग,
चूनरी कंगना प्रिय पिया के संग–संग।
ओ संगिनी........

अपने आंचल के कोर–कोर बांधे स्वजनों की स्नेह डोर।
घर को संभालती सहेजती, हर राह डगर चलती चलती
रही अथक सदा सजना के संग–संग।
ओ संगिनी.......

शशि की शीतल छाया तले मंजरी में भर आई सुवास।
ज्यों सरस्वती के आंगन में रहे सदा शुभ लक्ष्मी का वास।
दादी से नानी तक अनेक रंग हुलसायें तेरे जीवन में उमंग।
ओ संगिनी.......

गुजरे हुए सुनहरे पचास वर्षों की याद
खोलती है मन के आंचल की गांठ।
बौराए मन को राहत देते हैं इन्द्रधनुषी रंग,
मंजरी का अस्तित्व है तो, सिर्फ शशि के संग–संग।
ओ संगिनी......

अजर अमर है उन दोनों का रंग,
अजर अमर है उन दोनों का संग।

ताई जी के प्रति – सौ. इन्दु कान्त जैन :

जो आज हमारे बीच नहीं रहीं, 'ज्योति निकुंज' के प्रांगण में विचरण करती उनकी काया आज तस्वीर के छोटे से फ्रेम में सिमट गई है। उनके साथ बिताये पलों की स्मृतियां आंखों के सामने घूम रही हैं।

मैंने उन्हें एक बोल्ड, कर्मठ, पावरफुल और आत्म–विश्वास से भरी महिला के रूप में ही जाना। वह टाइम की बहुत पंक्च्युवल थी। टीम बनाकर उसके साथ कार्य करने की कला उनमें थी। उनका जिम्मेदारी से और बहुत सलीके से हर कार्य करने का तरीका मुझे प्रभावित करता था। यह गुण मैंने ताई जी से ही सीखा था कि कार्य को निपुणता से कैसे किया जाता है। चंद पंक्तियों के साथ श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूँ –

कल का 'है' आज 'था' हो गया,
वर्तमान अब भूत हो गया,
नाम था पहचान जिसकी,
वह सदेही निराकार हो गया।

जिस आंचल की छांव तले थी,
कितने रिश्तों की पहचान,
वह स्थान अब शून्य हो गया,
शब्द निराधार हो गया।

✦

भाभी जी के प्रति – श्री स्वराज्य चन्द्र जैन :

देवी तुल्य हे भाभी आपको शत–शत वन्दन करते हैं
प्रेम सुधा बरसाने वाली नयन आज हम भरते हैं
शीतल छांव स्नेह सरिता से धन्य हुए हम सभी परिजन
आज बिछुड़ने पर श्रद्धावनत हो नमन आपको करते हैं
अश्रुपूरित नेत्रों से आपको हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

✦✦✦

दादी ✧ मां ✧ अनुजा ✧ मौसी ✧ ताई ✧ भाभी

संगिनी मंजरी

'नारी की मर्यादा' प्रस्तुत करते हुए

पाठकों के पत्र

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श 85 की प्रति के लिये धन्यवाद। **शोधादर्श** के विगत तीन विद्वान सम्पादकों के विषय में जानकारी, उनके द्वारा किये उत्कृष्ट कार्य का उल्लेख व उसके नमूनों का संकलन सुरुचिपूर्ण व आकर्षक है।

दूर–दूर के प्रान्तों से भेजे गये लेख व समीक्षार्थ पुस्तकें इस बात का साक्षात् प्रमाण हैं कि **शोधादर्श** की स्वीकार्यता तथा सम्मान निरन्तर बढ़ रहा है।

आपके मार्गदर्शन में सम्पादक मण्डल द्वारा किया गया घोर परिश्रम अत्यंत प्रशंसनीय है। विद्वान लेखकों द्वारा लिखे गये लेख व कवितायें ज्ञानवर्धक व मन को छू लेने में सक्षम हैं।

डॉ. शशि कान्त के लेख 'श्रवणबेलगोला के गोम्मटेश्वर बाहुबली', व डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के लेख 'खारवेल के हाथीगुम्फा में मंगल चिह्न' गहन शोध के स्पष्ट प्रमाण हैं। दोनों लेखों ने मुझे बहुत प्रमुदित किया।

श्री शिरीष कान्त जैन, मेरठ

I have received Shodhadarsh 85 a few days back and gone through the contents. You have done a good job by bringing out the life and work history of Dr. Jyoti Prasad Jain, Sh. Ajit Prasad Jain and Sh.Rama Kant Jain.It is most essential to tell the new generation about their contribution to Jainism in particular and society in general.

2018 is the year of Mahamastakabhishek of Bhagwan Bahubali. Article by Dr. Shashi Kant about the idol of Bahubali Swami at Shravanbelgola is quite informative. Sh. Rajiv Kant Jain, Chief Engineer, Indian Railways, has paid Shraddha Suman to his Baba ji in poetic form, it made me feel good.

Congratulations to you and your editorial team .Our faher Dr. Shashi Kant at this juncture of his age is doing great work in guiding you people for maintaining the reputed status of the magazine. Keep it up.

संग–संग जीवन की डगर पर

परिणय की हीरक जयन्ती

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क रु. 60/–(साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहियें परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– **सम्पादक**